मैडम भीकाजी कामा

मैडम भीकाजी कामा

रचना भोला 'यामिनी'

प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली

उन लोगों के नाम

जिनके लिए

देशप्रेम, निष्ठा, आस्था, कर्तव्य

व आत्मत्याग जैसे शब्द,

मात्र शब्द नहीं, जीवन के

अनुभूत सत्य हैं!

अनुक्रमणिका

लेखिका की ओर से...

1. पारसी समुदाय व मैडम कामा
2. जन्मभूमि से संपर्क
3. 'क्रांति की जननी का जन्म'
4. आतंक का घर
5. लाला लाजपत राय का निर्वासन
6. 'झंडा ऊँचा रहे हमारा...'
7. अमेरिका यात्रा
8. हिंसा के समर्थन में...
9. राष्ट्रीय एकता का संदेश
10. एक सच्चा बलिदान
11. सावरकर के लिए
12. वंदेमातरम् पत्र
13. मैडम कामा का दुःसाहस
14. रूसी क्रांति में रुचि
15. एक अंतहीन संघर्ष...
16. ऐ मेरे प्यारे वतन...
17. मातृभूमि की गोद में...
18. मैडम कामा की याद में...

परिशिष्ट

1. प्रमुख सहयोगी

2. 'एक स्नेही व्यक्तित्व'

3. 'वंदेमातरम्' से कुछ अंश

संदर्भ सूची

लेखिका की ओर से...

'मैडम भीकाजी रुस्तम कामा' जिन्हें हम मैडम कामा के नाम से जानते हैं, सही मायने में यूरोप में भारतीय क्रांतिकारियों की संरक्षिका व प्रेरणास्रोत रही हैं। वे ब्रिटिश राज के विरुद्ध भारत की स्वाधीनता के लिए संघर्ष करनेवाली पहली भारतीय महिला थीं।

उन्होंने ही सबसे पहले किसी अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारत का राष्ट्रीय ध्वज फहराने का ऐतिहासिक कार्य संपन्न किया। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में, इंग्लैंड व फ्रांस में स्वाधीनता संघर्ष के लिए बने क्रांतिकारी संगठनों में उनका बहुत बड़ा हाथ था।

विदेशियों के सामने परतंत्र भारत का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करना, भारतीय क्रांतिकारियों की हर संभव सहायता करना, पत्रों के माध्यम से राष्ट्रीयता का प्रचार करना, दूसरे देशों में क्रांतिकारियों का समर्थन पाना, क्रांतिकारी साहित्य का गोपनीय प्रचार-प्रसार व विदेशों से अस्त्र-शस्त्र भेजने की व्यवस्था करना आदि मैडम कामा के जीवन की उल्लेखनीय उपलब्धियाँ रही हैं।

एक संपन्न भारतीय परिवार की पुत्री व पुत्रवधु मैडम कामा को केवल इसलिए निर्वासन का दंड भोगना पड़ा, क्योंकि वे अपने राष्ट्र को स्वतंत्र देखना चाहती थीं, अंग्रेजों के अत्याचारी शासन को जड़ से उखाड़ फेंकना चाहती थीं। एक ऐसे गणराज्य की स्थापना करना चाहती थीं, जो पूरे गर्व से सारे संसार के सम्मुख खड़ा हो सके।

मैडम कामा ने अपने जीवन के सुदीर्घ पैंतीस वर्ष विदेशों में बिताए। उन्हें भारत लौटने की अनुमति नहीं दी गई। इतना बड़ा ब्रिटिश साम्राज्य, उस महिला से भयभीत था, जिसे उसने खतरनाक व उग्र 'क्रांतिकारिणी' की संज्ञा दी थी। मैडम कामा विदेशी धरती पर भी मातृभूमि को नहीं भूलीं। उन्होंने स्वतंत्रता-प्राप्ति को ही जीवन का ध्येय बना लिया।

वे क्रांति की जननी बनकर क्रांतिकारियों का सुख-दुःख बाँटने लगीं। वे प्रत्येक भारतीय नवयुवक को देशभक्ति की प्रेरणा व दीक्षा देतीं, यहाँ तक कि उन्होंने मातृभूमि के इस बलिदान यज्ञ में अपनी निजी संपत्ति, सुख व सुविधाओं की भी आहुति दे दी। घर-परिवार से पूरी तरह कट गईं, संबंधियों से नाता टूट गया, परंतु वही अभिशप्त, एकाकी निर्वासन उनके लिए वरदान बन गया। यदि वे भारत में रहतीं तो पारिवारिक व सामाजिक वर्जनाएँ तथा अंग्रेज सरकार का विरोध उन्हें अपने विचारों को क्रियान्वित न करने देता। विदेशी भूमि पर उन्होंने देश की स्वतंत्रता के लिए संपूर्ण शक्ति से काम लिया।

अपने देश की परंपराओं व संस्कृति पर मान करनेवाली मैडम कामा ने आजीवन अपने धर्म की मान्यताओं व परंपराओं का पालन किया, उन्होंने पारसी धर्म की शिक्षाओं को जीवन में उतारा। वे विदेशों में पढ़नेवाले भारतीय तरुणों को भी शिक्षा देती थीं कि चाहे कहीं भी जाओ, कहीं भी रहो, किंतु अपनी भाषा, संस्कृति और सभ्यता को न भूलो।

मैडम कामा का अधिकांश जीवन विदेशों में ही व्यतीत हुआ। यद्यपि भारतीय स्वाधीनता संग्राम की क्रांतिकारी महिलाओं में उनकी अग्रणी भूमिका रही। उनके विचार व सिद्धांत जनचेतना को जाग्रत् करने में सहायक रहे। उन्होंने 'वंदेमातरम्' के जनघोष के साथ जो लक्ष्य-ध्वज हाथ में लिया, उसे आजीवन झुकने नहीं दिया।

यह पुस्तक उसी महान् क्रांतिकारिणी मैडम कामा को श्रद्धांजलि देने के लिए लिखी गई है, जिन्हें देशवासियों ने बड़ी कृतघ्नता से भुला दिया। यह जीवनी पाठकों को उनके जीवन, मिशन व गतिविधियों का उचित परिचय दे पाएगी, इसी आशा के साथ!

—रचना भोला 'यामिनी'

पारसी समुदाय व मैडम कामा

मैडम भीकाजी रुस्तम कामा पारसी समुदाय से संबंध रखती थीं। लगभग आधा जीवन विदेशों में निर्वासितों की तरह व्यतीत करने के बावजूद वे कभी भी अपने धर्म या मान्यताओं को नहीं भूलीं। धर्म की मान्यताओं व सिद्धांतों का उनके जीवन पर गहरा प्रभाव रहा। जरोस्ट्रियन धर्म के बारे में जानने से पहले, भारत में बसे पारसियों के वैभवशाली अतीत के बारे में कुछ जान लें।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी में, पेर्सेपौलिस में एक महान् पारसी साम्राज्य की स्थापना हुई थी, जिसने बीस महाद्वीपों व बीस राष्ट्रों पर लंबे समय तक शासन किया। जरोस्ट्रियन इन्हीं का राजधर्म था। इसके करोड़ों अनुयायी रोम से लेकर सिंधु नदी तक फैले थे। उत्कर्ष और पतन के चक्र से गुजरते इन साम्राज्यों ने काफी समय बाद मुसलिम आक्रमणकारियों द्वारा सताए जाने से बचने के लिए ईरान से पलायन किया। शरणार्थियों का पहला समूह 8वीं से 10वीं सदी के बीच गुजरात के 'दीव' द्वीप पर पहुँचा। उन दिनों वहाँ का स्थानीय शासक था 'जादव राणा'।

जादव राणा की शर्तें

उसने मुँह से तो कुछ नहीं कहा, किंतु पारसियों के पुरोहित दस्तूर नेर्योसांग को एक कटोरे में दूध भिजवा दिया। दूध का कटोरा यह जताने के लिए था कि वे उसके देश में अवांछनीय थे, परंतु पुरोहित भी कुछ कम न थे। उन्होंने भी संकेत रूप में उत्तर देते हुए दूध के कटोरे में थोड़ी चीनी डालकर भिजवा दी, जिसका अर्थ था कि पारसी लोग स्थानीय लोगों से उसी प्रकार घुल-मिल जाएँगे—जैसे दूध में शक्कर घुलती है।

जादव राणा ने उनके सामने कुछ शर्तें रखीं—

☛ आप धर्मगुरु को अपने धर्म का अर्थ समझाएँगे।

☛ गुजराती को मातृभाषा के रूप में अपनाएँगे।

☛ पारसी स्त्रियाँ भी साड़ियाँ पहनेंगी।

☛ उन्हें सारे हथियार जमा करवाने होंगे।

☛ वे सूर्यास्त के बाद विवाहोत्सव करेंगे।

☛ जुलूस भी सूर्यास्त के बाद निकालेंगे।

पुरोहित ने शर्तें मान लीं। उन्हें अपने धर्म व परंपराओं का पालन करने, बच्चों को अपनी मान्यताओं के अनुसार पालने व खेती-बाड़ी के लिए थोड़ी जमीन की स्वीकृति भी मिल गई।

इस तरह पारसी वहाँ के माहौल में घुल-मिल गए। उनके धर्मग्रंथ का संस्कृत में अनुवाद हुआ। 'किस्सा ए संजान' से उनके विषय में अन्य कई ऐतिहासिक जानकारियाँ भी मिलती हैं। वे लोग संजान में रहते थे, किंतु 15वीं सदी में वहाँ मुसलमानों के आक्रमण के कारण स्थान छोड़ना पड़ा। वे लोग पवित्र अग्नि को अपने साथ 'नक्साही' ले गए तथा पवित्र 'अग्नि मंदिर' की स्थापना की। पुरोहित के परस्पर कलह के कारण 1742 में उसी पवित्र अग्नि को 'उदवदा' स्थानांतरित कर दिया गया। आज भी यह स्थान पारसियों के लिए तीर्थस्थान से कम नहीं है।

पारसियों का व्यापारिक विकास

16वीं सदी में सूरत एक प्रमुख व्यापारिक केंद्र बन गया। पारसी भी वहीं आकर बसने लगे, क्योंकि वे अंग्रेजों से व्यापार करते थे। 19वीं शताब्दी के प्रारंभ में वे लोग बंबई जाकर बसने लगे, क्योंकि गुजरात में अकाल पड़ने के कारण आर्थिक दशा शोचनीय थी और बंबई में दिन-दूनी रात चौगुनी औद्योगिक प्रगति हो रही थी।

पहले-पहल पारसी खेती-बाड़ी करते थे, किंतु शीघ्र ही अपनी तीव्र दृष्टि के कारण उन्होंने बढ़ईगिरी, जहाज-निर्माण व दलाली आदि पेशे भी अपना लिये। वे व्यापार के लिए पड़ोसी देशों में जाने लगे। कहते हैं कि अकबर के दरबार में भी पारसियों के धर्म सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया था।

पारसी समुदाय व शिक्षा

पारसी समुदाय ने बहुत पहले ही शिक्षा के वास्तविक महत्त्व को जान लिया था। सन् 1870 तक सौ से भी अधिक पारसी लड़कियाँ प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा पा चुकी थीं। पारसियों ने चिकित्सा, कानून व इंजीनियरिंग के क्षेत्र में पाश्चात्य शिक्षा पाने में देर नहीं की। वे राजनीतिक महत्त्व के पदों पर आसीन हुए। कहना न होगा कि तत्कालीन समाज के उत्कर्ष में उनका गहरा योगदान रहा।

सन् 1892 में दादा भाई नौरोजी ब्रिटिश हाउस ऑफ कॉमन्स के सदस्य चुने गए। वे इस हाउस के लिए चुने जानेवाले पहले भारतीय थे।

पारसी समुदाय व देश की प्रगति

पारसी समुदाय ने भारत में हर क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दिया। पारसियों के पास वित्तीय साधनों के अलावा सूती वस्त्र उद्योग का तकनीकी ज्ञान भी था, इसलिए देश में इस उद्योग की स्थापना हुई। जमशेदजी टाटा ने पनबिजली कारखाना खोला, जमशेदपुर में लोहा व इस्पात उद्योग की नींव डाली। देश में पहला वैज्ञानिक संस्थान भी उन्होंने ही स्थापित किया था।

यद्यपि भारत के स्वतंत्रता संग्राम में पारसियों ने काफी हद तक तटस्थता की नीति अपनाई, किंतु अनेक ऐसे पारसी स्त्री-पुरुष भी हुए, जिन्होंने उल्लेखनीय योगदान दिया, जैसे—दादाभाई नौरोजी, फिरोजशाह मेहता, दिनशा बाच्छा व मैडम कामा आदि।

अन्य क्षेत्रों में सैम मानकशॉ, होमी जहाँगीर जे. भाभा, सूनी तारापोरेवाला, जमशेदजी टाटा, वाडिया, गोदरेज व नानी एफ. पालकीवाला आदि अग्रणी रहे।

दादाभाई नौरोजी ने अपने एक भाषण में कहा था—"मैं जो कुछ भी हूँ—हिंदू, मुसलमान, पारसी, ईसाई या किसी अन्य धर्म का अनुयायी—सबसे पहले एक भारतीय हूँ।"

इन सब नामों के साथ यदि सच्चे राष्ट्रवादी बरजोरजी फ्रामजी भरुचा व फिरोज गांधी का नाम न लें तो अन्याय होगा। फिरोज गांधी के विषय में तो गांधीजी ने यहाँ तक कहा था —"यदि मुझे अपने साथ काम करने के लिए फिरोज जैसे सात युवा मिल जाएँ तो मैं सात दिनों में स्वराज पा लूँगा!"

दादाभाई नौरोजी की पोती पेरीन कैप्टेन ने गांधीजी की सच्ची कार्यकत्री समर्थक के रूप में कार्य किया। भारतीय स्त्रियों को स्वतंत्रता संग्राम में आगे आने की प्रेरणा देने में पारसी महिलाएँ पीछे नहीं हटीं।

मैडम कामा की धर्मपरायणता

जरोस्ट्रियन धर्म व मैडम कामा आजीवन मित्र रहे। उनके जीवन की परिस्थितियाँ इतनी

अलग थीं कि यदि वे चाहतीं तो उन विदेशियों के बीच, उन्हीं के रंग में घुल-मिल जातीं, किंतु मैडम कामा ने अंत तक अपनी परंपराओं व मान्यताओं को आदर-मान दिया।

निःसंदेह उनके विचार काफी आधुनिक थे, किंतु उन्होंने कभी भी 'सुद्रह' और 'कुस्ती' धारण करना नहीं छोड़ा।

'सुद्रह' सबसे पहले धारण किया जानेवाला सफेद रंग का सूती वस्त्र होता है। इसमें 'वी' आकार का गला होता है। गले के नीचे एक छोटी सी जेब होती है, जिसे 'सद्कर्मों का पॉकेट' कहते हैं। यह धारक को याद दिलाती है कि ईश्व र की भलाई के आगे हमारे नेक कर्म एक वर्ग इंच से ज्यादा नहीं हैं। मनुष्य को हमेशा अपनी इस जेब को सद्कर्मों से भरना है।

'कुस्ती' को धर्म की भाषाओं का प्रतीक माना जाता है। यह भेड़ की ऊन के 72 धागों से बना होता है। इसे बुनते समय विशेष प्रार्थना होती है। इस पवित्र धागे को सुद्रह के ऊपर पहनते हैं। कमर में तीन बार लपेटकर, इसमें आगे व पीछे गाँठ डालते हैं। सभी जरोस्ट्रियन बच्चों को बचपन से ही लघु प्रार्थना सिखाई जाती है। जिसे 'अहुनवर' या 'अथाओवर' कहते हैं।

मैडम कामा के कई परिचितों ने अपने संस्मरणों में कहा है कि वे हमेशा अहुनवर की प्रार्थना दोहराती रहती थीं। उनके पास हमेशा 'जेंद अवेस्ता' की एक प्रति रहती थी। उनके सभी चित्रों में हम उन्हें परंपरागत साड़ी में देखते हैं, जिसमें एक छोर से उनका सिर ढका होता है। एक उग्र क्रांतिकारिणी का विशुद्ध भारतीय स्वरूप!

जन्मभूमि से संपर्क

भीकाजी कामा का जन्म 24 सितंबर, 1861 को बंबई (मुंबई) के एक संपन्न पारसी परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम था सोराबजी फ्रामजी पटेल तथा माँ का नाम था जीजाबाई। सोराबजी बंबई के प्रसिद्ध व्यापारी थे। पारसी समुदाय उस समय भी काफी प्रगतिशील माना जाता था। नारी मुक्ति व स्त्री शिक्षा के लिए वे लोग बहुत पहले ही जागरूक हो गए थे।

एलेक्जेंड्रा गर्ल्स एजुकेशन इंस्टीट्यूशन से भीकाजी ने प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा पाई, वह उस समय देश का सर्वोत्तम महिला स्कूल माना जाता था। घर में सब उन्हें प्यार से 'मुन्नी' कहते थे। नौ भाई-बहनों के बीच मैडम कामा का स्वभाव शुरू से ही काफी अलग था। उन्होंने बचपन में ही कई भाषाएँ सीख ली थीं।

पारसी समुदाय का वातावरण

तत्कालीन पारसी अंग्रेजों के समर्थक माने जाते थे। भीकाजी के परिवार में संपन्नता व अभिजात्य वर्ग की स्पष्ट छाप थी। समृद्ध पारसी परिवारों में पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव साफ देखा जा सकता था। आलीशान शानोशौकत का सारा सामान विदेशों से मँगवाया जाता था। घरों में अंग्रेज सम्राट् के चित्र लगे रहते थे। बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के लिए गवर्नेंस रखी जातीं।

पारसियों ने बड़ी तेजी और लगन के साथ अंग्रेजी और दूसरी यूरोपीय भाषाओं को भी अपनाया। उन्होंने अंग्रेजों द्वारा खेले जानेवाले खेलों को भी शौक से अपना लिया।

कहना न होगा कि वे तेजी से बदलती दुनिया में अंग्रेजों के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चलने में होड़ रखते थे। उनके घरों की स्त्रियाँ चाहे पारसी तरीके से साड़ी पहनतीं, पर

सार्वजनिक व सामाजिक समारोहों में पुरुषों से मिलने पर उन्हें कोई रोक-टोक न थी। इस तरह वे महिलाएँ केवल घर की चारदीवारी व चूल्हे-चौके तक सीमित न थीं। देश की तत्कालीन राजनीतिक व आर्थिक स्थिति से भी वे पूर्णतया परिचित थीं।

युवा भीकाजी भी ऐसे ही स्वतंत्र व ऐश्व र्यपूर्ण वातावरण के बीच बड़ी हुईं। उन्हें समाज के उच्चवर्गीय लोगों से मिलने-जुलने व हर तरह के विषय पर बात करने का अवसर मिलता। संभवतः वहीं से, अंग्रेजों की छत्रच्छाया के बीच पलते माहौल में रहने के बावजूद वे अंग्रेजों के अत्याचार का मन-ही-मन विद्रोह करने लगी थीं।

निजी व्यक्तित्व का निर्माण

भीकाजी पर अंग्रेजी वातावरण का प्रभाव नहीं पड़ा। निःसंदेह वे नए फैशन की पोशाकें पहनती थीं। विदेशी समाज से उन्मुक्त भाव से मिलतीं। अपने परंपरामुक्त उत्साही स्वभाव के कारण ही वे क्रिकेट में भी दिलचस्पी रखती थीं। उस समय यह खेल केवल पुरुषों की बपौती था।

उन्होंने अपने जीवन के प्रारंभिक तीस वर्ष ऐसे लोगों के बीच बिताए, जो देश को आधुनिकता की दौड़ में तो शामिल करना चाहते थे, किंतु उनका आजादी से जुड़े किसी भी क्रियाकलाप से कोई लेन-देन नहीं था। भीकाजी घर से बाहर घट रही घटनाओं से अनजान नहीं थीं। वे जल्द-से-जल्द भारत को अंग्रेजों के अत्याचार से स्वतंत्र कराने का सपना देखने लगी थीं।

विवाह

भीकाजी का विवाह बंबई के ही धनी व प्रतिष्ठित पारसी परिवार में तय हुआ। प्रसिद्ध प्राच्यवेत्ता प्रोफेसर खुरशेदजी रुस्तम कामा उनके भावी श्वसुर थे। कामा अपने श्वसुर पर विशेष श्रद्धा रखती थीं और उनकी विद्वता के आगे नतमस्तक थीं।

उनके मंगेतर का नाम था ‘रुस्तम कामा’। एक सुशिक्षित, सुसंपन्न व सुदर्शन युवक, जो कि प्रख्यात परिवार का सुपुत्र था। भीकाजी के लिए ऐसा पति पाना सौभाग्य की बात थी, कम-से-कम सभी इष्ट मित्रों ने तो यही माना। रुस्तमजी पेशे से वकील थे। कोई भी लड़की उनकी धर्मपत्नी बनकर स्वयं को धन्य मानती, क्योंकि उस समय महिलाओं की सोच का दायरा ही विवाह, संतान व गृहस्थी तक सीमित था।

3 अगस्त, 1885 को मैडम भीकाजी परिणय सूत्र में बँधीं। निःसंदेह यह उनके जीवन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना थी, किंतु उसी वर्ष दिसंबर में इंडियन नेशनल कांग्रेस का पहला अधिवेशन भी उनके लिए कम महत्त्वपूर्ण नहीं था। नवविवाहिता कामा ने मानो इस वर्ष दो विपरीत राहें एक साथ चुन ली थीं। एक रास्ता, पतिगृह के कर्तव्यों से निभाते हुए

गृहस्थ जीवन की ओर जाता था तो दूसरा रास्ता काँटों से भरे पथ की ओर जाता था। जहाँ गुमनामी, अकेलेपन, प्रताड़ना व अपमान के सिवा कुछ न था।

भीकाजी ने कांग्रेस की काररवाई देखी व सुनी तथा जान लिया कि आनेवाले वर्षों में कांग्रेस न केवल भारत को आजादी दिलाने में हाथ बँटाएगी, बल्कि नारी मुक्ति के लिए भी प्रयत्नशील होगी।

देश-सेवा का व्रत

मैडम कामा के पति सार्वजनिक जीवन में कोई रुचि नहीं रखते थे। ब्रिटिश शासकों की 'कृपा' को ही सर्वस्व माननेवाले रुस्तमजी काफी अनुदार विचारों के स्वामी निकले। इस तरह शुरू से ही पति-पत्नी में वैचारिक मतभेद होने लगे। धीरे-धीरे यह मानसिक दूरी बढ़ती चली गई।

यद्यपि मैडम कामा मानती थीं कि उनका विवाह एक आदर्श युवक से हुआ था, पर साथ ही उनका यह भी कहना था कि अपने देशवासियों की सामाजिक व राजनीतिक दृष्टि से भी उनका गठबंधन हुआ था। उन्हें देश पुकार रहा था। वे कब तक देश की और अपने हृदय की पुकार को अनसुना करतीं।

यदि चाहतीं तो वे पति के घर के ऐशो-आराम के बीच शान से रहतीं, महँगी पोशाकों व गहनों से सज-धजकर दावतों का हिस्सा बनतीं, किंतु उन्होंने तो देश-सेवा का व्रत ले लिया था और देश के लिए कुछ कर गुजरने का जज्बा रखनेवालों को और कुछ नहीं सुहाता।

पति से कलह

रुस्तमजी उन लोगों में से थे, जो भारत में अंग्रेजी राज के समर्थक थे। उनका मानना था कि ऐसा होना ही देश के हित में था। यद्यपि शुरुआत में उन्होंने अपनी पत्नी के समाज सुधार के कार्यों में सहयोग भी दिया था। मैडम कामा सामाजिक सुधार की एक पत्रिका निकालती थीं, जिसके संपादन में वे सहयोग देते थे। यहाँ तक तो ठीक था, किंतु घर की बहू समाज सेवा के लिए सड़कों व झोंपड़पट्टी तक पहुँच जाए, यह उन्हें गवारा न था।

1896 में बंबई में महामारी फैली। मैडम कामा अपने संपन्न परिवार की सुख-सुविधाएँ छोड़कर रोगियों की परिचर्या में जुट गईं। सफेद एप्रन पहने भीकाजी फ्लोरेंस नाइटिंगेल से कम नहीं दिखती थीं।

रुस्तमजी के परिवारजन यही सोचते रहे कि बहू बचपना कर रही है। शौक पूरा होगा तो अपने-आप सँभल जाएगी, पर भीकाजी तो पहले ही सँभल चुकी थीं। इधर ससुराल पक्ष अंग्रेजी सभ्यता व शासन का पोषक था तो उधर वे ब्रिटिश विरोधी काररवाइयों में जुटी

थीं। पति को उनके इस सामाजिक व राजनीतिक जीवन से चिढ़ होने लगी थी।

रुस्तमजी के मना करने के बावजूद वे प्लेग पीड़ितों की सेवा करती रहीं। उनका जीवट तो देखिए, उस समय प्लेग के टीके का भी आविष्कार नहीं हुआ था, पर वे अपनी जान पर खेलकर सेवा कार्यों में लगी रहीं।

ससुराल व मायके पक्ष के लोगों के लिए यह बात किसी बड़े अपमान से कम नहीं थी कि उनकी बहू-बेटी सार्वजनिक अस्पतालों व निर्धन बस्तियों में मारी-मारी फिर रही थी।

जिस मैडम कामा को बड़े-बड़े लोगों की दावतों में शामिल होकर प्रतिष्ठा का प्रतीक बनना था, जो रुस्तमजी के परिवार की शान थीं, उसे इस रूप में देखकर वे आपा खो बैठे और पति-पत्नी में प्रतिदिन कलह होने लगी।

समाज सेवा से...

मैडम कामा ने अपने सार्वजनिक जीवन में समाज सेवा के माध्यम से प्रवेश किया था। प्लेग नियंत्रण के नाम पर अंग्रेजों द्वारा होनेवाले अत्याचारों को देखकर उनके सब्र का बाँध टूट गया। पहले-पहल वे कांग्रेस के माध्यम से राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेती रहीं और अंततः उग्र राष्ट्रीय व क्रांतिकारी गतिविधियों का अंग बनीं।

सन् 1901 में भीकाजी रोगग्रस्त हो गईं और डॉक्टरों ने उन्हें विदेश जाकर उपचार कराने का परामर्श दिया।

'क्रांति की जननी का जन्म'

यद्यपि मैडम कामा का जन्म कई वर्ष पूर्व हो चुका था, किंतु लंदन पहुँचने के बाद वे सही मायनों में ‘क्रांति की जननी’ बनीं मानो यह उनका नया जन्म था। समृद्ध पारसी परिवार की लाड़ली पुत्री और सुशिक्षित-संपन्न परिवार की पुत्रवधु मैडम कामा एक ऐसी नई दुनिया में प्रवेश करने जा रही थीं, जहाँ अनिश्चितता व दुःखों की काली छाया थी। निर्धनता व अभाव का साम्राज्य था। असफलताओं व अपमान का घोर अंधकार था, किंतु इन सबके बीच एकमात्र प्रकाश की किरण थी देश को ‘स्वतंत्रता दिलाने की उत्कट इच्छा’। स्वतंत्रता पाने की यह भावना ही प्रत्येक बाधा का मुँहतोड़ जवाब बनी।

भारत में अस्वस्थ कामा का रोग किसी की समझ नहीं आया तो चिकित्सकों ने परामर्श दिया कि उन्हें इंग्लैंड भेज देना चाहिए। शुभचिंतक तथा परिवार के सभी सदस्यों की यही इच्छा थी कि वे स्वास्थ्य के लिए विदेश चली जाएँ। संभवतः उनके पति भी यही चाहते थे कि वे विदेश में रहें, ताकि उनके सिर से देशभक्ति का भूत उतर जाए, किंतु वे यह नहीं जानते थे कि भारत माँ की सच्ची संतानें कभी अपने व्रत से नहीं डिगतीं। अतः एक प्रकार से मैडम कामा को भारत से बाहर जाने के लिए विवश कर दिया गया।

वे 1901 में इंग्लैंड के लिए रवाना हुईं। भारत की धरती से जहाज रवाना हुआ तो मैडम कामा की आँखें नम थीं। वे कहाँ जानती थीं कि आने वाले 35 सुदीर्घ वर्षों के लिए उन्हें उनकी मातृभूमि से दूर रहना होगा।

लंदन प्रवास

सफल ऑपरेशन व चिकित्सा के बाद वे स्वस्थ हो गईं तथा होलबोर्न क्षेत्र में एक प्रतिष्ठित परिवार के साथ पेइंग गेस्ट के रूप में रहने लगीं। यहीं से उनके राजनीतिक व क्रांतिकारी

जीवन का सूत्रपात हुआ। वे भारत में ब्रिटिश राज के विरुद्ध सक्रिय प्रचार करने लगीं। उन्होंने लंदन में बसने से पहले जर्मनी, स्कॉटलैंड व फ्रांस में एक-एक वर्ष का समय बिताया। इस दौरान उनके राजनीतिक संपर्क व्यापक हुए तथा विचारधारा में मौलिक परिवर्तन आए।

वरिष्ठ नेता दादाभाई नौरोजी भी उन दिनों वहीं थे। मैडम कामा उनकी निजी सचिव के रूप में काम करने लगीं। वे उनके साथ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के काम में हाथ बँटाने लगीं। नौरोजी के माध्यम से उन्हें राजनीतिक दायरे के अनेक व्यक्तियों से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ। विभिन्न देशों की भाषाओं ने उनकी सोच को नया आयाम दे दिया था। 'व्यक्तिगत स्वतंत्रता' का प्रश्न अब पहले से भी नए रूप में प्रखर हो उठा था।

क्रांतिकारियों से भेंट

इटली के महान् क्रांतिकारी नेता मेजिनी के विचारों का भी उन पर गहरा असर पड़ा। लंदन में उन दिनों श्यामजी कृष्ण वर्मा, सरदार सिंहजी रेवाभाई राणा व सरोजिनी नायडू आदि भारतीय रह रहे थे। लंदन अन्य देशों के क्रांतिकारियों की भी आश्रयस्थली था।

सर्वप्रथम एच.एम. हिंडमैन ने कांग्रेसी नेताओं द्वारा अपनाई गई नीतियों का विरोध किया। मैडम कामा, श्यामजी कृष्ण वर्मा तथा एस.एस. राणा भी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की ब्रिटिश कमेटी से असंतुष्ट थे। हिंडमैन ने समाचार-पत्र के माध्यम से जागरण का शंख फूँकने का सुझाव दिया। उन्हें विचारों के संप्रेषण में प्रेस व मीडिया के महत्त्व का ज्ञान था।

मैडम कामा हाइड पार्क में भारत की स्वतंत्रता के विषय में खुलेआम भाषण देने लगीं। भारत जैसे देश की किसी महिला का यह प्रयास जनता के लिए आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता का विषय था। प्रभाव चाहे धीमा ही था, किंतु मैडम कामा का प्रयास निष्फल नहीं गया। लंदन में बसनेवाले भारतीय इस विचारधारा को समर्थन देने लगे थे कि देश को आजादी मिलनी चाहिए।

इधर भारत में उग्रवादी आंदोलनों की बाढ़ आ गई थी। प्लेग के बाद अनेक हिंसात्मक घटनाएँ घटीं। इनके साथ ही सरकार का दमन चक्र भी तेजी से चलने लगा। इसके प्रतिरोध में लेखकों एवं कवियों की कलम आग उगलने लगी।

एक नई राह

श्यामजी कृष्ण वर्मा लंदन से भारतीय क्रांति का संचालन कर रहे थे। उन्होंने 1905 में 'द इंडियन सोशियोलॉजिस्ट' नामक अंग्रेजी मासिक पत्रिका निकाली, जिसके दार्शनिक आवरण में क्रांति का प्रचार किया जाने लगा। उन्होंने कहा—

‘‘अत्याचार का प्रतिरोध केवल उचित ही नहीं, अनिवार्य भी है। इंग्लैंड और भारत के राजनीतिक संबंधों को मद्देनजर रखते हुए इंग्लैंड में तत्काल एक ऐसे भारतीय व्याख्याकार की जरूरत आ पड़ी है, जो भारत की ओर से यहाँ की सरकार को बताए कि भारतवासी किस तरह ब्रिटिश शासन के अधीन गुलामी में दिन काट रहे हैं।’’

दादाभाई नौरोजी ने मैडम कामा का परिचय सरदार सिंह राणा से करवाया था, जो उन दिनों इन्स ऑफ कोर्ट के इनर टेंपल के विद्यार्थी थे। उनके माध्यम से ही वे श्यामजी कृष्ण वर्मा से मिलीं। दादाभाई नौरोजी से राजनीति की बारहखड़ी सीखने के बाद उन्होंने इन क्रांतिकारियों के साथ मिलकर एक ऐसी राह चुनी, जिसने उन्हें उग्र राष्ट्रवादी बना दिया।

मैडम कामा नियमित रूप से ‘इंडियन सोशियोलॉजिस्ट’ के लिए लिखने लगीं। इस पत्र का मुख्य उद्देश्य यही था कि भारत में ‘संपूर्ण होमरूल’ की माँग की जाए।

उधर कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में माँगें पेश करने का सिलसिला जारी था। निःसंदेह इन माँगों व प्रस्तावों से जनमत तो तैयार हो रहा था, किंतु अनेक ऐसे व्यक्ति सामने आ रहे थे, जो धैर्य से प्रतीक्षा नहीं करना चाहते थे। वे कटु शब्दों में अंग्रेजी शासन की धज्जियाँ उड़ाने से नहीं डरते थे।

यहाँ यूरोप व अमेरिका में भी अनेक ब्रिटिश विरोधी केंद्र बन गए थे। इन्हीं केंद्रों के माध्यम से उग्र व उत्तेजक क्रांतिकारी साहित्य का प्रचार-प्रसार होने लगा। इन क्रांतिकारियों को आयरलैंड, मिस्र व रूस के क्रांतिकारियों से भरपूर समर्थन प्राप्त हुआ।

यहाँ तक कि हड़तालों व असहयोग के तरीकों में विश्व ास रखनेवाले श्यामजी कृष्ण वर्मा ने भी पत्र में लिखा—‘‘कारण चाहे जो भी हों... भारत के लोगों का संवैधानिक आंदोलन में विश्व ास नहीं रहा। लगता है कि भारत में गुप्त रूप से आंदोलन चलाना जरूरी होता जा रहा है। हमें पूरे जोश से रूसी माध्यम अपनाकर ही अंग्रेज सरकार के होश ठिकाने लगाने होंगे।’’

वह भारत के इतिहास में काफी उथल-पुथल भरा समय था। मैडम कामा पूरी सक्रियता से क्रांतिकारी साथियों के साथ स्वाधीनता के लिए कार्य करने लगीं। संवैधानिक तरीके से आंदोलन में आस्था रखनेवाली मैडम कामा को परिस्थितियों ने एक उग्र राष्ट्रवादी बना दिया और उन्होंने इस मार्ग को भी ललक से अपना लिया, क्योंकि स्वाधीनता प्राप्ति के लिए उन्हें कोई भी तरीका मान्य था, चाहे वह कितना ही खतरनाक व कठिन ही क्यों न था।

आतंक का घर

‘आतंक का घर’, ‘द हाउस ऑफ मिस्ट्री’, ‘द बी हाइव’ (मधुमक्खियों का छत्ता) ‘शैतान व उसके दर्जन भर गंदे चेले’ (द डेविल एंड हिज डर्टी उजेन) और ‘मांद’! जी हाँ ब्रिटिश गुप्तचर विभाग लंदन स्थित ‘इंडिया हाउस’ को इन्हीं नामों से पुकारता था। घनी झाड़ियों, जंगली लताओं व नीची चारदीवारीवाली यह तिमंजिली इमारत मैडम कामा के जीवन में विशेष महत्त्व रखती थी। यद्यपि वे वहाँ रहती नहीं थीं, किंतु सभी गतिविधियाँ इंडिया हाउस में ही केंद्रित होती थीं।

उनके साथी क्रांतिकारी, उनके जोशीले भाषण, क्रियाकलाप, लेखों व समितियों का मूल यही स्थान था। दरअसल इसे श्यामजी कृष्ण वर्मा ने स्थापित किया था। प्रत्यक्ष रूप से तो यह 25-30 व्यक्तियों के रहने का स्थान था, जहाँ शुद्ध भारतीय भोजन मिलता था। विदेश स्थित भारतीय छात्र यहाँ रहते थे, किंतु वास्तव में यह ब्रिटिश विरोधी स्थान, तरुण भारतीयों का क्रांतिकारी केंद्र था।

यहाँ भाषण कक्ष, पुस्तकालय व मनोरंजन कक्ष भी था। छात्र 16 रु. प्रति सप्ताह की दर से इसकी सुविधाएँ ले सकते थे। आगे चलकर यह स्थान भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन का ऐसा केंद्र बना, जिसके नाम से गुप्तचर विभाग तक थर्रा उठता था।

इंडिया हाउस के संस्थापक व क्रांतिकारी राजनेता श्यामजी कृष्ण वर्मा का मानना था कि भारत की स्वतंत्रता भारतवासियों पर ही निर्भर करती है। यदि वे अपने विदेशी स्वामियों की मदद करना बंद कर दें तो वह दिन दूर नहीं, जब विदेशी शासन का समूल नाश हो जाएगा।

उद्घाटन समारोह

1 जुलाई, 1905 को 'इंडिया हाउस' का उद्घाटन हुआ। उस समय सभा में सभी प्रमुख पत्रों के संवाददाता, इंग्लैंड के सभी राजनीतिक दलों के प्रतिनिधि, श्री हिंडमैन, श्री क्वेल्य, मैडम डेस्पार्ड, श्री स्विनी, मैडम कामा, दादाभाई नौरोजी, लाला लाजपत राय, श्री हंसराज, श्री दोस्त मुहम्मद व अनेक भारतीय छात्र उपस्थित थे।

श्यामजी ने अपने भाषण में दादाभाई नौरोजी के प्रति आभार प्रकट किया, जो विभिन्न राजनीतिक विचार रखते हुए भी उनके समारोह में शामिल हुए थे। श्री हिंडमैन ने इस अवसर पर ऐतिहासिक भाषण दिया। उन्होंने कहा—"आज जो स्थिति है, उसमें ब्रिटेन के प्रति भक्ति व निष्ठा का अर्थ है, भारत के प्रति गद्दारी। मैं अनेक भारतीयों से मिल चुका हूँ, उनमें से अधिकांश ने ब्रिटिश शासन के प्रति जो भक्ति व निष्ठा दरशाई है, वह वास्तव में घृणास्पद है। या तो वे अज्ञानी हैं या उनमें ईमानदारी की कमी है। यद्यपि मुझे इस बात की भी प्रसन्नता है कि कुछ समय से एक नई भावना व उत्साह उत्पन्न हो रहा है। आज इस संध्या में यहाँ एकत्रित सभी जातियों के स्त्री-पुरुष, हालाँकि एक-सी विचारधाराएँ नहीं रखते, किंतु सबका लक्ष्य एक-सा ही है : वह है भारत की स्वतंत्रता।"

स्वयं इंग्लैंड से आशा रखना व्यर्थ है। दृढ़ निश्चयवाले क्रांतिकारी तथा मातृभूमि के लिए स्वयं को बलिदान कर देनेवाले ही भारत की मुक्ति के लिए कोई हल निकाल सकते हैं।

...इंडिया हाउस की स्थापना भारत की मुक्ति व उन्नति की दिशा में एक कदम है और संभवतः यहाँ एकत्रित नर-नारियों में से कुछ इसकी शानदार सफलता के सुफल देख पाएँ...।"

मैडम कामा व इंडिया हाउस

मैडम कामा का हृदय इन शब्दों को सुन आंदोलित हो उठा। निःसंदेह वे भारत की मुक्ति के लिए उठ रहे हर कदम में भरपूर साथ दे रही थीं।

यद्यपि अब वे इतनी युवा नहीं रही थीं, किंतु अपने स्वास्थ्य की परवाह न करते हुए राजनीतिक जीवन में व्यस्त रहतीं। इंडिया हाउस में साप्ताहिक बैठकें होतीं। यहीं वे एस.आर. राणा, हरदयाल जी, सेनापति बापट, वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय, परमानंद व एम.पी.टी. आचार्य तथा वीर सावरकर जैसे क्रांतिकारियों के साथ आंदोलन को आगे बढ़ाने की योजनाएँ तैयार करतीं।

यद्यपि गांधीजी इंडिया हाउस के लोगों को 'हिंसक दल' मानते थे, किंतु इसके बावजूद वे उनकी बौद्धिक क्षमता, सच्चाई व आत्मत्याग की प्रशंसा भी करते थे।

उस समय विदेश स्थित अनेक तरुण भारतीयों के लिए यह स्थान प्रेरणा का स्रोत रहा। 'इंडिया हाउस' तरुण भारतीयों को क्रांतिकारियों के रूप में दीक्षित करता। केवल पढ़-लिखकर अच्छी नौकरी पाने व सुख से जीने की इच्छा रखनेवाले तरुण भी यहाँ आकर

निजी स्वार्थ भूल जाते व देश-सेवा का संकल्प लेते।

जब वीर सावरकर इंडिया हाउस के नेता बने तो उन्होंने 'अभिनव भारत' नाम से एक समिति बनाई। वहाँ नियमित रूप से बैठकें होतीं। क्रांतिकारियों के जन्म दिवस मनाए जाते, भारतीय पर्वों की धूम मचती, उनके निधन पर शोक सभाएँ आयोजित होतीं। कहना न होगा कि भारत में घटनेवाली प्रत्येक अच्छी-बुरी घटना की अनुगूँज वहाँ सुनाई देती थी।

मैडम कामा बड़ी उमंग से इन सब कार्यों में हिस्सा लेतीं। उन्हें अपने विचारों को मूर्त रूप देने का साधन मिल गया था। जब सभी क्रांतिकारी मिल बैठते तो ऐसे उग्र व जोशीले विचार सामने आते, जो अंग्रेजी शासन की नींव हिला सकते थे।

अपने देशवासियों में स्वतंत्रता की तीव्र भावना जाग्रत् करने का हरसंभव कदम उठाया जाता। देखते-ही-देखते श्यामजी कृष्ण वर्मा की सैद्धांतिक उग्रता के स्थान पर वहाँ उग्र व राजद्रोहयुक्त गतिविधियाँ होने लगीं।

इसी कड़ी में वीर सावरकर ने एक पुस्तक लिखी 'फर्स्ट वार ऑफ इंडियन इंडिपेंडेंस'। ब्रिटिश सरकार तक इसके लिखे जाने की खबर पहुँच गई। पुस्तक प्रकाशित भी नहीं हुई थी कि उसे जब्त कर लिया गया।

मैडम कामा और वीर सावरकर ने जान लिया था कि उन्हें अपने विचारों का अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रचार करना होगा, ताकि पूरी दुनिया के दूसरे देशों के सामने भी भारत की तत्कालीन स्थिति का वास्तविक चिंतन हो सके।

भारत की राजनीति से सहानुभूति रखनेवाले अंग्रेजों व अंतरराष्ट्रीय नेताओं को अपनी ओर लाने के लिए वे जोशीले लेख व भाषण लिखते, फिर उन लेखों का फ्रांसीसी, इतावली, जर्मन, पुर्तगाली व रूसी भाषाओं में अनुवाद करके वितरित किया जाता। स्वयं मैडम कामा ने सावरकर की पुस्तक का फ्रांसीसी अनुवाद किया था। यह वही पुस्तक थी, जो बाद में क्रांतिकारियों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हो गई थी। वे इसे अपनी गीता मानते थे। इंडिया हाउस के क्रांतिकारी प्रत्येक बैठक व सम्मेलन के प्रारंभ में 'वंदेमातरम्' का गान करते। वे रात को सोते समय सामूहिक रूप से प्रार्थना करते । जिसके शब्द थे—

एक देवता; एक देश; एक भाषा।

एक जाति; एक जीव; एक आशा।

ब्रिटिश विरोधी मोर्चा

वीर सावरकर चाहते थे कि एक संयुक्त ब्रिटिश विरोधी मोर्चा बनाया जाए, ताकि सभी एक साथ मिलकर विद्रोह कर सकें। इस विद्रोह के लिए हथियारों का होना अत्यावश्यक था, उन्होंने लेखन व मुद्रण कार्य के अतिरिक्त उत्तेजक व विस्फोटक साहित्य के प्रचार का

जिम्मा भी ले रखा था।

लंदन में कहीं कोई ऐसा स्थान न था, जहाँ क्रांतिकारी हथियार चलाने की ट्रेनिंग ले पाते। वहाँ राइफल शूटिंग क्लब तो थे, किंतु उनमें भारतीयों का प्रवेश वर्जित था। इंडिया हाउस के क्रांतिकारी एक उजाड़ स्थान पर स्वयं लक्ष्य-भेदन का अभ्यास करते। यही नहीं, कुछ लोग बम बनाने की विधि पर भी काम कर रहे थे। वे उस विधि को पुस्तक के आकार में भारत तक भेजना चाहते थे, ताकि अन्य क्रांतिकारी भी उस विधि का लाभ उठा सकें।

स्वतंत्रता संग्राम का अर्धशताब्दी समारोह

इंडिया हाउस में प्रथम स्वाधीनता संग्राम का अर्द्धशताब्दी समारोह मनाया गया। संचालक श्यामजी कृष्ण वर्मा ने समारोह की अध्यक्षता के लिए प्रस्ताव रखा—

"मैं इस गौरवशाली महापर्व की अध्यक्षता के लिए महान् क्रांतिकारी सरदार सिंह राणा का नाम प्रस्तावित करता हूँ। आशा करता हूँ कि आप सब अनुमोदन करें।"

सभी ने एकमत से उनके प्रस्ताव को समर्थन दिया। नाना साहब पेशवा, तात्या टोपे व महारानी लक्ष्मीबाई आदि के चित्रों का अनावरण किया गया।

उस सभा में मैडम कामा पहुँच नहीं सकी थीं। श्री राणा ने उनका संदेश पढ़कर सुनाया, जिसके अंश निम्नलिखित हैं—

"आज का दिन हम सभी भारतीयों के लिए बड़ी प्रेरणा व गर्व का दिन है। आज हम अपने देश की स्वतंत्रता के महायज्ञ, भारत के प्रथम स्वाधीनता संग्राम का अर्द्धशताब्दी समारोह मना रहे हैं। हम उन सभी ज्ञात व अज्ञात अमर आत्माओं की स्मृति को श्रद्धा सहित प्रणाम करते हैं, जिन्होंने देश की स्वतंत्रता के लिए अपने प्राण पुष्पों की तरह अर्पित कर दिए। उन वीरों की आत्माएँ हमें भी उसी पथ पर चलने की शक्ति प्रदान करें।"

उस समारोह में श्री राणा ने अपनी आगामी मास की आय शहीद निधि में अर्पित कर दी। मैडम कामा ने ब्रिटिश विरोध के बावजूद गुप्त रूप से सावरकर की पुस्तक प्रकाशित करवाई व उसकी एक प्रति मैक्सिम गोर्की के पास रूस भी भेजी।

भारत में सुभाषचंद्र बोस ने उस पुस्तक का अंग्रेजी संस्करण तथा भगतसिंह ने हिंदी संस्करण निकाला। इस प्रकार मैडम कामा की हिम्मत से अनेक प्रकार का क्रांतिकारी साहित्य विभिन्न स्थानों में पहुँचता रहा।

जासूसों की जासूसी

इंडिया हाउस में मैडम कामा व सावरकर द्वारा कई प्रकार का जोशीला व उग्र साहित्य

तैयार होता था। जब सरकार ने उनके साहित्य को प्रतिबंधित किया तो उन्होंने उसे पांडिचेरी के रास्ते भारत भेजने का रास्ता निकाल लिया। हजारों की संख्या में क्रांतिकारी पुस्तिकाएँ लिखते, जिन्हें बिना किसी नाम-पते के छापकर, सैकड़ों अलग-अलग पतों पर भेज दिया जाता।

क्रांतिकारी युवक मैडम कामा के नेतृत्व में एक सटीक व ठोस लक्ष्य पा चुके थे। मैडम कामा प्रायः उनसे कहतीं—

"स्वतंत्र भारत एक गणराज्य होगा; हिंदी राष्ट्रभाषा होगी व देवनागरी राष्ट्रीय लिपि।" सभी क्रांतिकारियों ने देश के लिए कुछ कर गुजरने व मर-मिटने की ठान ली थी।

इधर ब्रिटिश गुप्तचरों के कानों में भी इन गतिविधियों की भनक पड़ चुकी थी। वे चाहकर भी कोई सुराग नहीं खोज पा रहे थे। उन्होंने कीर्तिकार नामक व्यक्ति को भेदिया बनाकर इंडिया हाउस में रहने भेज दिया।

उस युवक ने कहा कि वह दंत चिकित्सा का प्रशिक्षण ले रहा है। स्कॉटलैंड यार्ड के गुप्तचरों के लिए एक बड़ी समस्या यह भी थी कि उन्हें चकमा देने के लिए भारतीय तरुण क्रांतिकारी अलग-अलग भारतीय भाषाओं में बोलते थे। इस प्रकार वे समझ ही नहीं पाते थे कि वहाँ क्या खिचड़ी पक रही थी।

कीर्तिकार इंडिया हाउस में रहने लगा और वहाँ के कुछ क्रियाकलापों की रिपोर्टें देने लगा, किंतु क्रांतिकारियों को शीघ्र ही उस पर संदेह हो गया। बातों-ही-बातों में एक क्रांतिकारी उसकी कक्षा में पहुँच गया। वहाँ जाकर पता चला कि वह तो कभी दंत चिकित्सा की कक्षा में गया ही नहीं था। इसका अर्थ था कि वह कोई भारतीय छात्र नहीं था।

उसी रात क्रांतिकारी चुपके से उसके कमरे की तलाशी लेने पहुँच गए। वहाँ उन रिपोर्टों का रिकॉर्ड मिल गया, जो उसने गुप्तचर विभाग को भेजी थीं। धमकी देते ही उस व्यक्ति ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया।

गुप्तचर विभाग को उसकी पोल खुलने का पता न चले, इसलिए उसे उसी तरह रिपोर्टें भेजने को कहा गया, किंतु अब वे सारी खबरें विनायक दामोदर सावरकर द्वारा सेंसर होती थीं। वे जो समाचार, वहाँ तक पहुँचाना चाहते थे, रिपोर्ट में केवल उन्हें ही शामिल किया जाता था।

लाला लाजपत राय का निर्वासन

जब इंडिया हाउस में विद्रोह की जयंती मनाई जा रही थी, भारत में उसी दिन अंग्रेज सरकार ने सरदार अजीत सिंह व लाला लाजपत राय को बंदी बना लिया। उन दोनों को किसी अज्ञात स्थान पर ले जाया गया। पूरे देश में शोक की लहर फैल गई। यह समाचार इंडिया हाउस तक पहुँचने में भी देर नहीं लगी। यद्यपि क्रांतिकारी, मैडम कामा व श्यामजी कुछ कर नहीं सकते थे, किंतु उन्होंने 'सोशियोलॉजिस्ट' के माध्यम से अंग्रेजों की इस अत्याचारपूर्ण कार्यवाही का विरोध किया।

श्यामजी ने लिखा—"लाला लाजपतराय का देश निकाला एक ऐसी घटना है जिसे हम भारत में ब्रिटिश शासन के पतन का पूर्वाभास कह सकते हैं। लाला लाजपत राय ने देशवासियों के सामने त्याग व लगन का जो आदर्श स्थापित किया है, वह भारतीयों को प्रेरणा देगा व उन्हें इस सत्य का अहसास दिलाएगा कि विश्व ने प्रगति की दिशा में जितने भी कदम उठाए हैं, उनमें से प्रत्येक फाँसी के एक तख्ते से दूसरे तख्ते की ओर व एक खतरे से दूसरे खतरे तक की यात्रा कर रहा है।"

एक अपील

मैडम कामा ने भावप्रवण शब्दों में देशवासियों से कहा—

"भाइयो व बहनो!"

एक सुबह मुझे यह जानकर गहरा दुःख हुआ कि हमारे सहयोगी व सच्चे देशभक्त लाला लाजपत रायजी को उनके घर से ले जाकर बंदी बना लिया गया है।

भारत के नर-नारियों, आप सब मिलकर इस क्रूर अत्याचार का सख्ती से विरोध करो। तय

कर लो कि चाहे प्राण ही क्यों न चले जाएँ, पर हम गुलामी सहन नहीं करेंगे।

भारत, फारस और अरब के प्राचीन वैभव का गुणगान करने से क्या लाभ, जबकि आज आप दासता से भरा जीवन व्यतीत कर रहे हैं। वीर राजपूतों, सिक्खों, पठानों, गोरखों, देशभक्त मराठों, बंगालियों, कर्मठ पारसियों, साहसी मुसलमानों, विनम्र जैनियों, महान् व शक्तिशाली प्रजातियों की धीर संतति—हिंदुओं, आप अपनी परंपराओं का पालन क्यों नहीं कर रहे हैं? वह कौन-सा कारण है, जिसने आपको गुलाम बनने पर विवश कर रखा है? अपने इन बंधनों से बाहर निकलो। स्वराज व समता स्थापित करो।

भाइयो व बहनो! मानव अधिकारों के लिए युद्ध लड़ो व पश्चिम को बता दो कि पूर्व उसे कितना कुछ सिखा सकता है। अंग्रेजों को जिन्हें, प्रसिद्ध कवि वड्र्सवर्थ के पौत्र श्री विलियम वड्र्सवर्थ ने 'श्वेत वस्त्रों में राक्षस' कहा है, उन्हें शिक्षा दे दो...।

जी तो चाहता है कि जेल के द्वार तोड़कर लाला लाजपत राय को बाहर निकाल लाऊँ—हम उनके जैसे देशभक्त को जेल की दूषित वायु में साँस लेने के लिए नहीं छोड़ सकते...।

'एकता में ही बल होता है'। आइए, हम सभी एकजुट हो जाएँ। यदि हम सभी लाला लाजपत राय के पथ पर चल पड़ें, उन्हीं की वाणी में बोलने लगें तो इस अंग्रेज सरकार को हम सबको निर्वासित करने के लिए जाने कितने किलें व जेलें बनवानी होंगी। हमारी आबादी तकरीबन 50 करोड़ है। हम सभी लाला लाजपत राय की तरह बनना सीख लें, तो एकता आते देर नहीं लगेगी। आइए, हम उनके कार्य को अपना कार्य व उनके कष्टों को अपना कष्ट बना लें।

...भारतीय युवाओ! आप भूत और भविष्य को जोड़नेवाला सेतु हैं। यद्यपि हम अपने देश की धरती पर पैर नहीं रख सकते, तथापि हमारे भाग्य में इतना तो लिखा है कि हम मरते दम तक देश को याद रखें। आइए, हम अटल सिद्धांत अपनाएँ। यह कभी न भूलें कि स्वतंत्रता को जीतना ही पड़ता है। यह कभी पैतृक अधिकार में नहीं मिलती।

...हमें स्वतंत्रता के इस संग्राम में इन वीरों को भी भुलाना नहीं चाहिए, जो हमेशा के लिए मातृभूमि की वेदी पर कुर्बान हो गए...।

मित्रो! अपना आत्मसम्मान जाग्रत् करो। अत्याचारी प्रशासकों के लिए काम मत करो। उनसे संबंध तोड़ लो। उनकी नौकरियों से त्याग-पत्र दे दो, फिर देखना इनका निरकुंश शासन ठप्प पड़ते देर नहीं लगेगी...। काश! मैं निजी रूप से आपको यह सब कहने आ पाती, किंतु मेरी गिरती सेहत इजाजत नहीं देती...।

ईश्व र करे कि पूरा भारत 'वंदेमातरम्' की प्रेरणा से एक होकर उठ खड़ा हो।

(पेरिस, सोशियोलॉजिस्ट; जून, 1907)

असहयोग की नीति व स्वेच्छा से बंदी बनना; मैडम कामा ने वर्षों पहले ही इन दोनों

नीतियों को अपनाने की अपील कर दी थी। आगे आने वाले वर्षों में ये दोनों नीतियाँ भावी नेताओं के लिए कितनी कारगार रहीं—यह तो सब जानते ही हैं। न केवल नेताओं बल्कि लाखों-करोड़ों भारतवासियों ने भी इन मंत्रों को हृदय से अपनाया व भारत की चिर-प्रतीक्षित स्वतंत्रता पाने में सफल रहे।

'झंडा ऊँचा रहे हमारा...'

राष्ट्रीय ध्वज देश के सम्मान का प्रतीक होता है। देश का प्रत्येक नागरिक न केवल राष्ट्रीय ध्वज का आदर करता है, बल्कि उसके सम्मान के लिए प्राणों की बाजी भी लगा देता है। उसकी मर्यादा का सदा पालन करता है।

वह राष्ट्रीय ध्वज ही तो है, जो आज भले ही आपको सरकारी व अर्द्धसरकारी भवनों पर शान से झूलता दिख रहा है, किंतु एक समय वह भी था, जब स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति के इस प्रतीक को फहराना कानूनन जुर्म था। 20वीं सदी में जब हमारा देश अंग्रेजों की परतंत्रता की बेड़ियों से आजाद होने के लिए संघर्षरत था तो स्वतंत्रता सेनानियों को एक ध्वज की आवश्यकता महसूस हुई। एक ऐसा ध्वज, जिसके तले भारतवासी भी पूरी शान से अपने विचार प्रकट कर सकें। राष्ट्रीय ध्वज का इतिहास भी कम रोचक नहीं है।

आज हम जिस तिरंगे को देखते हैं, वह नाना कल्पनाओं व विचारों के विभिन्न रूपों से होता हुआ हम तक पहुँचा है। इसी शृंखला में हम सबसे पहले सिस्टर निवेदिता द्वारा कल्पित ध्वज की चर्चा करेंगे।

सिस्टर निवेदिता का ध्वज

काफी समय से निवेदिता के मन में राष्ट्रीय ध्वज की कल्पना आकार ले रही थी। उन्होंने अपनी एक मित्र को लिखा था—"हमने भारतीय राष्ट्रीय ध्वज के लिए आकृति तय कर ली है और वह है वज्र। इस नमूने का ध्वज मैं बना भी चुकी हूँ। दुर्भाग्यवश चीनी राष्ट्र के युद्धध्वज को कल्पना में रखकर, मैंने पहली बार लाल पृष्ठभूमि पर काली वज्र की आकृति बनाई, पर शायद यह भारतीयों को पसंद नहीं आएगी—यह सोचकर मैंने सिंदूरी रंग पर पीली आकृति बनाकर, दूसरा नमूना बनाया है।"

राष्ट्रीय ध्वज के विषय में उनका मत था—

‘‘यह एक वरदान भी हो सकता है और एक शाप भी। यह समर्पण का भी प्रतीक है तो कभी-कभी केवल खोखली घोषणाओं का आधार मात्र भी है। इसके आधार तले जघन्य हत्याएँ भी हो सकती हैं तो इसकी रक्षा के लिए लोग खून की नदियाँ तक बहा देते हैं। यह एक यज्ञभूमि के समान पवित्र है...यह प्रतीक अनंतकाल तक अटल रहेगा। इस पर आस्था रखनेवाले जनमानस पर इसका गहरा प्रभाव पड़ता है।’’

उन्होंने वज्र को ध्वज पर भारतीय अस्मिता के प्रतीक के रूप में प्रयोग करना चाहा, क्योंकि प्राचीन परंपराओं के अनुसार वज्र को सम्मान, पवित्रता, बुद्धिमत्ता, शुचिता व शक्ति का प्रतीक माना जाता है। सिस्टर निवेदिता के ध्वज को कई ख्यातनाम लोगों ने सराहा व स्वीकृत कर, इसका प्रयोग भी करने लगे।

पहली बार तीन रंगों का प्रयोग

सन् 1906 में बंगाल के बँटवारे के विरोध में जुलूस निकाले गए। उन जुलूसों में शचींद्र कुमार बोस ने तिरंगे झंडे का प्रयोग किया। इस ध्वज में सबसे ऊपर केसरिया, बीच में पीले व सबसे नीचे हरे रंग का प्रयोग किया गया था। केसरिया रंग पर 8 अधखिले कमल के फूल सफेद रंग में थे। हरे रंग पर एक सूर्य व चंद्रमा बना था। बीच में पीले रंग पर हिंदी में ‘वंदेमातरम्’ लिखा था।

बर्लिन कमेटी ध्वज

अब हम उस ध्वज की बात करेंगे, जिसे पहली बार किसी अंतरराष्ट्रीय मंच पर सैकड़ों विदेशियों के सम्मुख बड़ी शान से फहराया गया था। इसे ‘बर्लिन कमेटी ध्वज’ के नाम से ही जाना जाता है, क्योंकि भारतीय क्रांतिकारियों ने इसे बर्लिन कमेटी में अपनाया था।

जीवन के अविस्मरणीय क्षण

22 अगस्त, 1907 को जर्मनी के स्टुटगार्ट नगर में अंतरराष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन होनेवाला था। इससे पूर्व हुए सम्मेलन में दादाभाई नौरोजी ने प्रतिनिधित्व किया था। सभी चाहते थे कि इस बार गरम दल के लोग भारत का प्रतिनिधित्व करें। उस सम्मेलन में मैडम कामा, वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय व सरदार सिंह राणा ने भाग लिया।

पारंपरिक पारसी साड़ी व पूरी बाँहों के ब्लाउज में गर्व से मस्तक ऊँचा किए खड़ी मैडम कामा को मंच पर देखते ही चारों तरफ कानाफूसी होने लगी। साड़ी के एक छोर से उनका सिर ढका था, जो उनकी विनयशीलता का द्योतक था, किंतु जब वही विनयशील व

सुसंस्कृत भारतीय महिला धाराप्रवाह बोलने लगीं तो उनके शब्दों से मानो आग बरसने लगी। श्रोता मंत्रमुग्ध हो उठे। जब भारत के राष्ट्रीय ध्वज के रूप में यूनियन जैक फहराया जाने लगा तो उन्होंने विरोध किया और अपने बैग से एक छोटा-सा तिरंगा झंडा निकाला व उसे फहराकर बोलीं—

‘‘महानुभावो! यह भारत की स्वतंत्रता का ध्वज है। देखिए, यह अवतरित हो चुका है। भारत के अमर शहीदों ने अपना रक्त बहाकर पहले ही इसे मंजूरी दे दी है। भद्र पुरुषो! मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ, खड़े होकर भारतीय स्वतंत्रता के इस ध्वज का अभिवादन करें। मैं इसी ध्वज को साक्षी मानकर दुनिया-भर के स्वतंत्रता प्रेमियों से अपील करती हूँ कि वे विश्‍व की 1/5 प्रतिशत आबादी को आजाद कराने में सहयोग दें...।’’

मैडम कामा ने विदेशी भूमि पर पहली बार राष्ट्रीय तिरंगा फहराकर सारी दुनिया का ध्यान अपने देश की समस्याओं की ओर खींचा। पूरी सभा ने खड़े होकर ध्वज के प्रति सम्मान प्रकट किया व तालियाँ बजाईं। सभी बैठ गए तो मैडम कामा ने उन्हें धन्यवाद देते हुए कहा—‘‘आप स्वाधीनता-प्रेमी महानुभावों ने स्वतंत्रता की चाह रखनेवाले देश के ध्वज का सम्मान किया, उसके लिए मैं अपने समस्त देशवासियों की ओर से आपका आभार प्रकट करती हूँ...।’’

पूर्ण स्वतंत्रता की माँग

राजनीतिक इतिहास में पहली बार पूर्ण प्रभुसत्तासंपन्न स्वतंत्रता की माँग मैडम कामा द्वारा रखी गई थी। मैडम कामा ने प्रस्ताव रखा था—‘‘किसी भी पूर्ण सामाजिक राज्य की सरकार अत्याचारी नहीं होती, भारत में ब्रिटिश शासन का बने रहना बहुत ही हानिकारक व खतरनाक है, अतः आप सब मिलकर...।’’

पहली बार एक अंतरराष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन में अंग्रेजों से साफ तौर पर कहा गया कि उन्हें भारत छोड़ देना चाहिए। ब्रिटिश प्रतिनिधिमंडल ने प्रस्ताव का विरोध किया। मैडम कामा के द्वारा झंडा फहराने या भाषण देने पर तो किसी ने कोई आपत्ति नहीं की, किंतु प्रस्ताव पर मतदान को रोकने के लिए तकनीकी आधार खोज निकाला गया।

कहा गया कि प्रस्ताव को सम्मेलन में भेजने से पहले अंतरराष्ट्रीय कार्यालय में नहीं भेजा गया था, इसलिए उस पर विचार नहीं हो सकता। यद्यपि अधिकांश नेतागण की सहानुभूति प्रस्ताव के पक्ष में थी। स्वयं हिंडमैन ने मैडम कामा की माँग को समर्थन दिया।

प्रस्ताव पारित नहीं हुआ, कोई बात नहीं, किंतु भारतीय प्रतिनिधिमंडल ने अपने तिरंगे तले खड़े होकर प्रस्ताव प्रस्तुत किया, अंग्रेजों को सबके आगे बेनकाब कर दिया, इतनी उपलब्धि क्या कम थी?

समाजवादी सम्मेलन में भाग

स्टॉकहोम में एक समाजवादी सम्मेलन हुआ तो वहाँ प्रतिनिधि बनने के इच्छुक भारतीयों से कहा गया—"आपके देश में कोई समाजवादी दल नहीं है इसलिए भारत का प्रतिनिधि हिस्सा नहीं ले सकता...।" वहाँ जाने के इच्छुक व्यक्तियों ने व्यक्तिगत रूप से सम्मेलन में हिस्सा लिया।

यहाँ यूरोप के प्रमुख समाजवादियों से संपर्क के फलस्वरूप मैडम कामा एक प्रतिनिधि के रूप में खड़ी हो सकीं। वे जानती थीं कि सभा में रूस का प्रतिनिधिमंडल भी उपस्थित है, अतः उन्होंने कहा—

"हमारा देश निर्धन है, अतः इस सम्मेलन में अपना प्रतिनिधिमंडल नहीं भेज सका, किंतु मैं आशा करती हूँ, एक दिन ऐसा भी आएगा, जब वे जाग्रत् होकर उन रूसी साथियों के पदचिह्नों पर चलेंगे, जो अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत हैं...हम उन्हें विशेष रूप से भाईचारे की शुभकामनाएँ देते हैं...।"

भारत का पहला राष्ट्रीय ध्वज

मैडम भीकाजी रुस्तम कामा का जो सर्वाधिक लोकप्रिय चित्र है, उसमें वे हमें हाथ में तिरंगा थामे खड़ी दिखाई देती हैं। वास्तव में वह ध्वज ही उनकी सर्वाधिक प्रसिद्धि का मूल कारण है। ध्वज को किसी भी राष्ट्र की आशाओं व आकांक्षाओं का प्रतीक कहा जा सकता है।

मैडम कामा व सावरकर ने मिलकर उस झंडे का नमूना तैयार किया था। कई जीवनीकारों ने तो यहाँ तक कहा है कि मैडम कामा ने अपनी साड़ी का पल्लू फाड़कर तिरंगा बनाकर लहरा दिया था, किंतु यह सब कपोल कल्पित है। उन्होंने झंडा बनाते समय काफी सोच-विचार किया था।

उस ध्वज में तीन चौड़ी पट्टियाँ थीं। सबसे ऊपर हरा रंग था, जो भारत की हरीतिमा का द्योतक था, हरा रंग मुसलमानों का भी पवित्र रंग माना जाता है। बीच में केसरिया रंग की पट्टी थी। केसरिया रंग हिंदू धर्म में पवित्र माना जाता है। तीसरी पट्टी पर लाल रंग था, जो भारतीय योद्धाओं का अपनी मातृभूमि के लिए रक्त (लाल) अर्पित करने के कारण वीरता का द्योतक माना जाता है।

ऊपरवाली हरे रंग की पट्टी पर आठ कमल पुष्प अंकित थे। उस समय भारत आठ प्रांतों में बँटा था और आठ कमल भारत की योग साधना के प्रतीक भी माने जा सकते हैं। बीचवाली केसरिया पट्टी पर एक ओर सूर्य तथा दूसरी ओर चंद्रमा अंकित थे। इन्हें हिंदू-मुसलिम एकता का प्रतीक कह सकते हैं। भारत में बसनेवाले विविध प्रकार के लोगों से जुड़े प्रत्येक प्रतीक को उस झंडे में शामिल किया गया था।

उस समाजवादी सम्मेलन में मैडम कामा के शब्दों की अनुगूँज व राष्ट्रीय ध्वज फहराने की चर्चा काफी समय तक रही। एक जर्मन समाचार-पत्र के शब्दों में—

‘‘कांग्रेस की चरम परिणति तब हुई, जब चमकीले सिल्क की पोशाक में मैडम कामा मंच पर आईं। उन्होंने कांग्रेस से इंग्लैंड के अत्याचारों से पीड़ित देशवासियों की सहायता करने की अपील की व आखिर में पीड़ित लोगों के ध्वज के रूप में, सिल्क का तिरंगा झंडा फहरा दिया। बहुत देर तक करतल ध्वनि होती रही...।’’

कमला देवी का संस्मरण

कई वर्षों बाद भारत की एक संभ्रांत व प्रतिभासंपन्न महिला कमला देवी चट्टोपाध्याय को मैडम कामा से भेंट करने का अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने अपने संस्मरण सुनाते हुए एक बार कहा था—

‘‘मैं यूरोप में एक और प्रसिद्ध व्यक्तित्व मैडम कामा से मिली थी। हालाँकि मैं पहले से जानती थी कि बंबई की एक युवा क्रांतिकारी पेरिस में रहती थीं, किंतु उनसे मिलने का पहला अवसर था।

इतनी आयु होने पर भी देश की आजादी में उनकी आस्था व निष्ठा बरकरार थी। मुझे उनसे मिलकर बेहद खुशी हुई। वे सौम्य व्यक्तित्व की स्वामिनी थीं। बातों-ही-बातों में चर्चा चली तो मैंने उन्हें बताया कि किस प्रकार हमने बर्लिन के महिला सम्मेलन में राष्ट्रीय झंडा बनाया था। यह सुनकर उन्होंने प्यार से मेरा हाथ थामा और फिर मुझे गले से लगा लिया। ऐसा लगा मानो सही मायनों में क्रांति की जननी ने मुझे आशीर्वाद दिया हो।’’

ऐतिहासिक ध्वज कहाँ है?

कलकत्ता में 1906 में जो ध्वज फहराया गया था तथा मैडम कामा ने सम्मेलन में 1907 में जो ध्वज फहराया, उनमें अद्‌भुत साम्य देखने को मिलता है। संभवतः भारतीय क्रांतिकारियों ने झंडे का नमूना बनाते समय पहलेवाले ध्वज को ध्यान में रखा हो।

मैडम कामा के साथ-साथ चलनेवाले उस ध्वज को सभी क्रांतिकारियों ने पूरे मान के साथ अपनाया। वे अपने भाषणों में प्रायः कहा करती थीं—

‘‘यही वह झंडा है, जिसके लिए खुदीराम व प्रफुल्ल चाकी ने अपने प्राण तक गँवा दिए।’’

गुजराती समाजवादी नेता श्री इंदुलाल याज्ञिक उस ध्वज को क्रांतिकारियों के दूसरे रिकॉर्डों के साथ छिपाकर भारत ले आए। उन्होंने आते ही वह सारी सामग्री किसी गुप्त स्थान पर रखवा दी।

1939 में वे बंदी बना लिए गए। उन दिनों वे यरवदा जेल में थे। उन्होंने श्री जी.वी. केतकर को जेल में बुलाकर एक परची दी।

उस परची के माध्यम से केतकरजी ने झंडा व क्रांतिकारियों के गोपनीय दस्तावेज प्राप्त किए। झंडे को एक खूबसूरत फ्रेम में सजाकर, पुणे में उसकी शोभा-यात्रा निकाली गई।

वह झंडा इन दिनों पुणे के 'केसरी' व 'मराठा' के कार्यालय के पुस्तकालय कक्ष में टँगा है। प्रत्येक अभ्यागत बड़े ही आदर व श्रद्धा से इसे शीश नवाता है और इसकी ऐतिहासिकता को स्मरण कर गर्व से भर उठता है।

अमेरिका यात्रा

इंटरनेशनल सोशलिस्ट कांग्रेस में झंडा फहराने के कुछ सप्ताह बाद मैडम कामा ने अमेरिका यात्रा की योजना बना ली, ताकि वे वहाँ के वासियों को भारत की तत्कालीन दुर्दशा का परिचय दे सकें और उनका समर्थन पा सकें। अक्तूबर, 1907 में वहाँ पहुँचते ही उन्होंने अपनी मुहिम आरंभ कर दी। यद्यपि वे अपने प्रचार के पक्ष में नहीं थीं, किंतु भाषणों के माध्यम से जनता के बीच पहुँचने के लिए मंच पर उतरना जरूरी था और इसी प्रक्रिया में वे अमेरिकावासियों के बीच काफी लोकप्रिय हो गईं। अमेरिकी प्रेस ने उन्हें 'भारतीय जोन ऑफ आर्क' की संज्ञा दी।

इसी दौरान एक मनोरंजक घटना घटी। अमेरिकी प्रेस एक भारतीय महिला के आगमन के समाचार से काफी उत्साहित थी। यद्यपि मैडम कामा से पूर्व वहाँ जानेवाले भारतीयों को कई बाधाओं व अड़चनों का सामना करना पड़ा था। अमेरिकी समाज, वातावरण व मानसिकता उनके विरुद्ध रही, क्योंकि अमेरिकी भारतीय राजनीतिक समस्याओं से कोई सरोकार नहीं रखते थे। उन्हें न तो इस विषय में अधिक जानकारी थी और न ही वे भारतवासियों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रवैया रखते थे। स्वामी विवेकानंद ने काफी हद तक इस मानसिकता को बदलने का प्रयास किया व सफल भी रहे, किंतु मैडम कामा का वहाँ भावभीना स्वागत हुआ।

अभी वे अमेरिका पहुँची भी नहीं थी कि मीडिया ने उनका एक बड़ा-सा चित्र प्रकाशित किया। उस चित्र में एक भारतीय महिला को सिर पर बड़ा-सा शॉल ओढ़े दिखाया गया था, जो पाठकों को जलती निगाहों से घूर रही थीं। यह सब कुछ मैडम कामा के लिए न केवल हैरतंगेज बल्कि हास्यास्पद भी था। वे बाद में भी अकसर अपने इस काल्पनिक चित्र का स्मरण कर हँस देतीं। उन्होंने अपने साथियों को भी इस विषय में बताया था।

भाषण तथा भेंटवार्ताएँ

अमेरिका पहुँचते ही वे भाषण व भेंटवार्त्ताएँ देने के कार्यक्रम में व्यस्त हो गईं। वे एक सुस्पष्ट, सुनिश्चित व सटीक लक्ष्य के साथ अमेरिका आई थीं, अतः उनके मन में किसी भी प्रकार की दुविधा न थी।

उन्होंने 'द सन्' को दिए गए एक साक्षात्कार में कहा—

"हम लोग गुलाम हैं। मेरा यहाँ आने का एकमात्र उद्देश्य यही है कि ब्रिटिश राज के अत्याचारों का पर्दाफाश कर सकूँ व अपने देश की स्वतंत्रता के लिए आपके देश का सहयोग पा सकूँ।

...इंग्लैंड हमारे देश का सारा धन ले जा रहा है। प्रतिवर्ष साढ़े तीन करोड़ पौंड की राशि हमारे देश से बाहर चली जाती है। नतीजतन हजारों लोग मारे जाते हैं, जो जीवित रहते हैं, वे अमेरिका के दान पर जीवित हैं। हम चाहते हैं कि हमारे देशवासी भी पाश्चात्य तरीके से शिक्षा पाएँ। हमारे पास अपनी संस्कृति है, किंतु देश को स्वतंत्र कराने के लिए धन की आवश्यकता है...।"

फिर उन्होंने कहा—"हम पर जो अत्याचार हो रहे हैं, उनकी चिंता कोई नहीं करता। मुझे पूरा यकीन है कि मैं भारत लौट पाऊँगी। हाल ही में हमारे दो सुसंस्कृत व्यक्तियों को बंदी बनाकर निर्वासित कर दिया गया, उनका कसूर सिर्फ इतना था कि वे देश की वास्तविक स्थिति बता रहे थे, इन दिनों वे बर्मा में हैं।"

इस प्रकार मैडम कामा ने जहाँ कहीं भी भाषण दिए, वहाँ श्रोताओं के सामने तत्कालीन

भारत पर हो रहे अत्याचारों की साफ तसवीर उभरकर सामने आई। सितंबर, 1907 में मैडम कामा के अमेरिका पहुँचने से एक माह पूर्व ही इंडो-अमेरिकन नेशनल एसोसिएशन की स्थापना हुई थी। नवंबर, 1907 में इस समिति का पुनः नामकरण किया गया। इस समिति के प्रमुख उद्देश्य थे कि अमेरिका में भारतीय छात्रों को सहयोग मिल सके, भारत व अमेरिका के बीच बनी खाई को भरा जा सके तथा भारतीयों तक अमेरिकी नागरिकों को सहानुभूति पहुँचाई जा सके।

मैडम कामा अमेरिका प्रवास के दौरान 'पैन-आर्यन' एसोसिएशन के सचिव श्री एस.एल. जोशी के साथ ठहरी। उन्होंने भाषणों में अमेरिका आने का उद्देश्य बताने के बाद स्पष्ट शब्दों में श्रोताओं से कहा कि भारत होमरूल पाना चाहता है।

भारत का गौरवशाली अतीत

अन्य राष्ट्रवादियों की भाँति मैडम कामा भी भारत की प्राचीन वैभवशाली सभ्यता व संस्कृति को माननेवालों में से थीं। उन्होंने अपने भाषणों में स्वामी विवेकानंद के आध्यात्मिक योगदान का उल्लेख करते हुए कहा था—

''भारत की जनता के पास संस्कृति की पूँजी है। गरीब-से-गरीब किसान को भी रामायण व महाभारत के आध्यात्मिक सत्यों का ज्ञान है। हमारा मानना है कि ऐसे सरल व आध्यात्मिक लोगों पर बंदूक के बल पर ईसाइयत लादना अनुचित होगा।''

एक ब्रिटिश पत्रकार ने उनसे पूछा कि विदेशी शासन का अंत कैसे संभव है? तब उन्होंने कहा—

''सविनय अवज्ञा के द्वारा। हमारे देशवासी शांतिप्रिय हैं और उनके पास कोई हथियार तक नहीं हैं। चाहने पर भी हम युद्ध नहीं कर सकते। बस यही करना काफी होगा कि हम उनके लिए काम करने से इनकार कर दें। पाँच ही दिन में ऐसी क्रांति होगी, जिसमें कोई रक्तपात नहीं होगा...।''

गुलाम देश की सेविका

मैडम कामा के प्रति लोगों के मन में बनी छवि एकदम अलग थी। वे एक पूर्वी महिला को हिंसा, क्रांति व रक्तपात की बातें करते देख रहे थे। अमेरिका में उनकी छवि एक ऐसी नारी बन गई थी, जो बात-बात में प्राचीन दर्शन व सभ्यता की दुहाई देती हो। चाहे जो भी हो, मैडम कामा ने उन सबको सम्मोहित कर दिया था।

'सन' के रिपोर्टर ने उनका साक्षात्कार लिया तो मैडम कामा ने विनती की—

''मेरी आपसे प्रार्थना है, समाचार-पत्रों में यह न छापा जाए कि मैं कहीं की राजकुमारी हूँ।

मैं जो नहीं हूँ, उस झूठ के सहारे मेरा परिचय न दिया जाए। मैं तो अपने पराधीन देश की सेविका मात्र हूँ...।''

अमेरिका से सहयोग

निःसंदेह मैडम कामा अमेरिका में जहाँ भी गईं, वहाँ के निवासियों से भरपूर सहयोग मिला। यद्यपि अपने सत्यवचन की नीति के कारण उन्हें कई अवसरों पर असुविधाजनक परिस्थितियों का सामना भी करना पड़ा, किंतु उन्होंने हिम्मत नहीं हारीं। वे जहाँ भी जातीं, गरिमामयी ध्वज उनके साथ रहता।

कह सकते हैं कि वे भारत की पहली गैरसरकारी राजदूत थीं। उन्होंने अमेरिका व उसके निवासियों की सराहना की। उनसे अपने देश की सहायता के लिए अपील की। अमेरिकावासी एक भारतीय महिला को मंच पर निर्भीकता से दहाड़ते देख दंग थे। वे जिस साहस से अपने झंडे तले खड़े होकर, ब्रिटिश शासन की पोल खोलती थीं, वह वास्तव में उनके लिए आश्चर्य का विषय था।

उन्होंने वाल्डोर्फ अस्टोरिया होटल में मिनर्वा क्लब के सदस्यों को संबोधित करते हुए कहा था—

''यहाँ के लोग रूस की परिस्थितियों के विषय में तो जानकारी रखते हैं, किंतु उन्हें यह नहीं पता कि अंग्रेज सरकार के अधीन भारत की क्या दुर्दशा हो रही है। हमारे सबसे श्रेष्ठ व्यक्तियों को या तो देश निकाला दे दिया जाता है, या जेल भेज दिया जाता है या पीट-पीटकर जेल, अस्पताल में पटक दिया जाता है। हम शांतिप्रिय हैं, हम रक्तपात नहीं चाहते हैं, किंतु इतना तो चाहते ही हैं कि देशवासियों को उनके अधिकारों की शिक्षा दें, ताकि वे इस अत्याचारी शासन को जड़ से उखाड़ फेंके।''

एक सफल यात्री

मैडम कामा की अमेरिका यात्रा का काफी अनुकूल प्रभाव पड़ा। भारतीय क्रांतिकारियों व अमेरिकावासियों के बीच मधुर संबंधों की स्थापना हुई। उनका अमेरिका जाने का एकमात्र उद्देश्य यही था कि वे भारतीय आंदोलन के प्रति अमेरिकी अधिकारियों के रवैये का अनुमान लगा सकें। उन्होंने अपने भाषणों में अंग्रेजों द्वारा किए जा रहे क्रूरतापूर्ण अत्याचारों का वर्णन करने के साथ-साथ यह भी स्वीकारा कि वे रशियन तरीके से ही अपनी खोई हुई आजादी वापस पा सकते थे।

अमेरिका से लौटने के बाद भी वे अपने सभी पत्रों व क्रांतिकारी साहित्य की प्रतियाँ वहाँ भेजती रहीं ताकि जनता को ताजा हालात की जानकारी मिलती रहे। वे लोग भी जान सकें कि भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन ने कितनी प्रगति की।

अमेरिका में बसे आयरिश नागरिकों ने उन्हें विशेष रूप से सहयोग दिया। उन्होंने आश्व ासन दिया कि वे भारत में क्रांतिकारी साहित्य व विस्फोटक सामग्री भेजने में भी सहायता देंगे।

मैडम कामा ने 'गैलिक अमेरिकन' के संपादक जॉर्ज फ्रीमैन को इन सारी गतिविधियों का भार सौंप दिया। फ्रीमैन ने 'द फ्री हिंदुस्तान' के प्रकाशन में भी विशेष रुचि ली, जिसे 'दि इंडियन सोशियोलॉजिस्ट' की तर्ज पर शुरू किया गया था।

वहीं मैडम कामा की भेंट बरकतउल्ला व फेल्प्स से भी हुई। उनके नेतृत्व में कई भारी कार्यक्रमों की रूपरेखा बनाई गई।

यद्यपि व्यस्त दिनचर्या ने रोगी शरीर को थका दिया था, किंतु अपने भाषणों, साक्षात्कारों व अपीलों के माध्यम से संदेश पहुँचाने की सफलता ने उन्हें उत्साहित कर रखा था।

वे अमेरिका से वापस कब लौटीं, इस विषय में कोई लिखित साक्ष्य नहीं मिलते, क्योंकि वे सभाओं तथा समारोहों में भाग लेने के लिए एक से दूसरे स्थान की यात्राएँ करती ही रहती थीं।

हिंसा के समर्थन में...

मैडम कामा व अन्य साथी क्रांतिकारी अब इस विचारधारा से अनुप्राणित थे कि अंग्रेजों के विरुद्ध हिंसक युद्ध छेड़े बिना हम स्वराज नहीं पा सकते।

फ्रांस का भारतीय समुदाय तो मैडम कामा को काली का अवतार मानता था। वह 'काली' जो दुष्टों का नाश करने के लिए उग्र व विकराल रूप धारण करती है, किंतु अपनी संतान के लिए स्नेही मातृशक्ति बन जाती है।

युवा क्रांतिकारियों में एकमात्र महिला होने पर भी उन्होंने कभी अपनी गतिविधियों पर आँच नहीं आने दी। हर नई सफलता उन्हें आगामी योजना बनाने के लिए प्रेरित करती। उनके पत्रों ने किसी भी तरह के आचार शास्त्र की दुहाई न देते हुए, सीधे वार करने की नीति अपनाई, चाहे वह 'वंदेमातरम्' हो या 'मदन्स तलवार!'

एक अपील

1908 में उन्होंने भारतवासियों के नाम एक अपील प्रकाशित की, जिसका शीर्षक था 'वंदेमातरम्-भारतवासियों को एक संदेश'। इस अपील से उनकी देशभक्ति, क्रांतिकारियों के आदर्शों व विचारों के अतिरिक्त यह भी पता चलता है कि उन्होंने सशस्त्र क्रांति व हिंसक काररवाइयों को समर्थन क्यों दिया? इस बारे में उन्होंने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था—

''देशवासियो! मेरी तरफ ध्यान दो। मैं आपका पाँच मिनट से अधिक समय नहीं लूँगी। मैं जो भी कहने जा रही हूँ, उसका उत्तरदायित्व अच्छी तरह से समझती हूँ। मैं हर बात के लिए पूरी तरह से तैयार होकर आई हूँ। मेरे पास बलिदान कर देने के लिए एक प्राण व एक ही अवतार है। हमारे देश में कितना अत्याचार हो रहा है, प्रतिदिन कितने लोगों के

निर्वासित होने की सूचनाएँ प्राप्त हो रही हैं, यह सब देख-सुनकर मैं भला कब तक शांत रह सकती हूँ? मैं शांति से जुड़े उन तरीकों को आपके सामने रखूँगी, जो मुझे सही लगते हैं।

यद्यपि न मुझमें इतनी शक्ति है, न मेरे पास इतना अधिकार है कि मैं देशभक्त देशवासियों को ये अधिकार बता सकूँ, किंतु मैं अपने विचार अवश्य रखूँगी। वहाँ भारत में जो लोग अत्याचार सह रहे हैं, वही सही मायने में जानते हैं कि उन्हें कौन सी राह अपनानी चाहिए।

मैं सच बोलूँगी और मुझे पूरा विश्व ास है कि हाल में ही भारत में घटी घटनाओं का हमारे क्रियाकलापों पर जरा भी प्रभाव नहीं पड़ेगा, ह म यूँ ही आगे बढ़ते जाएँगे। क्या हमारे देशवासी भयभीत हो गए हैं? नहीं-नहीं, संभवतः नए नियम पुराने नियमों से भी बदतर हैं। उनके अनुसार काररवाई तो शीघ्र हो सकती है, किंतु वास्तव में वे ज्यादा अनुचित नहीं हैं...।

आपमें से कुछ लोग कहेंगे कि मुझे एक स्त्री होने के नाते हिंसा का विरोध करना चाहिए। श्रीमान्, कुछ समय पहले तक मेरी भी यही सोच थी। तीन वर्ष पहले तक मैं हिंसक विचारों की चर्चा भी नहीं कर सकती थी, किंतु अब नरमपंथियों की टूटती हिम्मत और पाखंड ने मेरी सोच बदल दी है। जब शत्रु हमें हिंसा का मार्ग अपनाने को विवश कर रहे हैं, तो हम हिंसा की निंदा क्यों करें? यदि हम बल प्रयोग कर रहे हैं, तो वह सिर्फ इसलिए कि हमें ऐसा करने के लिए विवश किया जा रहा है। अंग्रेज स्त्री-पुरुष, रूस की सोफी पेरोवांस्की व उसके साथियों को वीर व जांबाज का दरजा देते हैं, जबकि हमारे भारतवासी वही सब करने पर गुनहगार ठहरा दिए जाते हैं। यदि रूस में हिंसा प्रशंसनीय है तो भारत में क्यों नहीं?

अत्याचार चाहे कहीं भी हो, अत्याचार ही कहलाता है। प्रताड़ना कहीं भी हो, प्रताड़ना ही कहलाती है। सफलता ही आपके कार्य को उचित या अनुचित का दर्जा दिलवाती है। स्वतंत्रता का यह संघर्ष, सफलता पाने के लिए कुछ अपवाद चाहता है। विदेशी शासन के प्रति सफल विद्रोह ही देशभक्ति है। स्वतंत्रता के बिना जीवन का क्या औचित्य है? सिद्धांतों के बिना अस्तित्व का ही क्या औचित्य ठहरता है? दोस्तो, हमें सारे संदेह, भय, बाधाओं व शंकाओं को एक ओर रखकर आगे बढ़ना होगा।

मैं मेजिनी के शब्दों में आपसे अपील करती हूँ—

‘हम उन लोगों से बहस करना छोड़ दें, जो हमारी बात समझते तो हैं, किंतु उसका पालन नहीं करते। यदि हमारे देशवासी स्वयं को अपमानित अनुभव करते हैं तो हमें उनकी स्थिति में सुधार लाने के लिए व हर तरह के खतरे का मुकाबला करने के लिए तैयार रहना चाहिए।’

भारतवासियो! अपने आत्मसम्मान को जाग्रत् करो व काम में जुट जाओ। बैठकों व प्रस्ताव पास करने के दिन अब लद गए। मौन भाव से ठोस कार्य करने के दिन अब आ गए हैं। एक मुट्ठी-भर विदेशियों व अंग्रेजों ने हमें युद्ध के लिए ललकारा है। यदि हम लाखों देशवासी

इस चुनौती को स्वीकार कर उनके विरुद्ध धावा बोल दें, तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? स्वतंत्रता का मोल तो चुकाना ही पड़ता है। ऐसा कौन-सा राष्ट्र है, जिसने बिना मोल चुकाए यह स्वतंत्रता पा ली हो।

ईश्व र का लाख-लाख शुक्र है, हमारे देशवासियों ने सीख लिया है कि अत्याचार सहना भी किसी पाप से कम नहीं होता। उन्होंने अविरल भाव से लड़ना सीख लिया है। वे जान गए हैं कि कीड़ों की तरह सड़ने से कहीं बेहतर है कि निर्भय होकर मौत को गले लगाया जाए। हमें अपनी शक्ति का अनुमान हो चला है। हम अपने पूर्वजों व महान् देश के नाम पर जाग्रत् हो उठे हैं और उन सभी अत्याचारियों का विरोध करते हैं...।

जिन चार युवकों को मौत के घाट उतारा गया, उनके प्राण मातृभूमि की बलिवेदी पर कुर्बान हो गए हैं। उन्होंने सत्य, न्याय व स्वतंत्रता की बलिवेदी पर अपने प्राण त्यागे हैं। आज मैं आपके सामने जो 'वंदेमातरम' का झंडा फहरा रही हूँ, उसे एक त्यागी युवा देशभक्त ने बनाया था, जो आज हमारे देश के तथाकथित न्यायालय के कटघरे में खड़ा है। वहाँ तो मानो न्याय व जूरी के नाम पर खेल चल रहा है, मखौल उड़ाया जा रहा है। हम तिलक और पिल्लै के मामले में भी न्याय का यह झूठा तमाशा देख चुके हैं।

उन्हें जेल क्यों भेजा गया? निर्वासित क्यों किया गया? सिर्फ इसलिए कि उन्होंने सच बोला था।

वह चापलूस जॉन मार्ले हमेशा अपनी पश्चिमी संस्थाओं व विलायती ओक वृक्ष का गुणगान क्यों करता रहता है? हमें उसकी अंग्रेजी संस्थाएँ नहीं चाहिए। हमें हमारा देश वापस चाहिए। भारत में किसी विलायती ओक की आवश्यकता नहीं है। हमारे पास अपना वट वृक्ष व कमल के फूल हैं। हम अंग्रेजी सभ्यता का अंधानुकरण नहीं चाहते। श्रीमान्, हमारी सभ्यता उससे कहीं ऊँची व महान् है। मार्ले की सभ्यता क्या है...? स्त्रियों पर अत्याचार? किसलिए? वह भी उनके मानवाधिकारों के लिए? मानवाधिकारों की माँग पर हम उनकी दुनिया में चारों ओर क्या देख रहे हैं... गरीबी, दुःख, लूट और अत्याचार!''

अंत में उन्होंने पाठकों से एक मार्मिक अपील की—

''हिंदुस्तानियो! हमारी क्रांति पवित्र है। कारण, हम उन भारतीय स्त्री-पुरुषों को बधाई दें, जो अंग्रेजी अत्याचारों के विरुद्ध निरंतर संघर्षरत हैं। भगवान् करे कि उनकी संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती जाए। उनके संगठन पहले से कहीं अधिक मजबूत हों। देश आजादी की ओर तेजी से बढ़े। देश स्वतंत्र हो व उसमें एकता स्थापित हो, यही मेरी एकमात्र कामना है। भारतीय युवाओ, मैं तुमसे आगे बढ़ने का आग्रह करती हूँ। दोस्तो, आगे बढ़ो, मातृभूमि की असहाय संतानों का नेतृत्व करो, ताकि वे सच्चे स्वराज की ओर उन्मुख हो सकें। हम सभी को आदर्शवान होना चाहिए।

हम सब भारत के लिए हैं और भारत भारतीयों के लिए है।''

इस प्रकार मैडम कामा ने खुलेआम सशस्त्र व हिंसक क्रांति के समर्थन में अपीलें कीं। उन्होंने अपने पत्र में भी यूरोप प्रवासी हिंदुओं के नाम संबोधन में कहा था—

‘‘मैं आपसे देशभक्ति के नाम पर अनुरोध करूँगी कि पश्चिम प्रवास का लाभ उठाते हुए, सभी प्रकार का शारीरिक प्रशिक्षण प्राप्त करें। आपको ‘फायर’ करना आना चाहिए, क्योंकि वह दिन दूर नहीं, जब आप ‘स्वराज’ व ‘स्वदेशी’ का लक्ष्य पा लेंगे व आपको अपने प्यारे देश से अंग्रेजों को मार भगाने के लिए बंदूक उठानी होगी...।’’

राष्ट्रीय एकता का संदेश

मैडम कामा और सावरकर दोनों ही अच्छी तरह समझ गए थे कि नरम दल कांग्रेसी कोई हित नहीं साध पाएँगे। इंग्लैंड में भी उन दिनों परिस्थितियाँ ऐसी न थीं कि वहाँ के निवासियों के सामने भारत की स्वतंत्रता की माँग रखी जाए। अतः वे विश्व के अन्य देशों में अपनी माँग के समर्थन में लोगों को एक करने लगे।

इस अंतरराष्ट्रीय प्रचार का प्रभाव दूरगामी था। एकदम से तो इसका कोई प्रभाव नहीं दिखा, किंतु क्रांतिकारी तरीके से कार्य करने के इच्छुक सदस्यों की संख्या व आत्मबल में वृद्धि हुई।

स्वतंत्रता के लिए 'हिंसा' को अनिवार्य मान लिया गया था मानो क्रांतिकारियों ने ठान लिया था कि वे आँधी की तरह आगे बढ़ेंगे और राह में आनेवाली बड़ी-से-बड़ी अड़चन को उखाड़ फेंकेंगे।

उधर श्यामजी पर भी अंग्रेज गुप्तचरों का शिकंजा कसता जा रहा था। उनके पत्रों को सेंसर किया जाने लगा। प्रेस पर पुलिस ने धावा बोल दिया।

मैडम कामा भी इंग्लैंड से निकलकर पेरिस जा बसी थीं। पेरिस व यूरोप में मैडम कामा का नाम एक नई पहचान के साथ उभरा था। श्यामजी व सावरकर लंदन में कार्यरत थे, किंतु मैडम कामा बैठकों व सम्मेलनों आदि में भाग लेने के लिए वहाँ आती रहती थीं।

गुप्त रिपोर्ट में उल्लेख

अंग्रेज सरकार द्वारा जारी गुप्त रिपोर्ट में मैडम कामा की गतिविधियों का भी उल्लेख मिलता है। रिपोर्ट में लिखा है कि मैडम कामा ने 24 नवंबर, 1908 को इंडिया हाउस की

एक बैठक में क्रांतिकारियों को संबोधित करते हुए कहा कि उन्हें बंगाल के राजनीतिक हत्यारों के पथ का ही अनुयायी बनना चाहिए। प्रत्येक हत्यारे का नाम लेने के साथ-साथ तालियों से स्वागत किया गया। उन्होंने सभी को वैसा बनने की प्रेरणा देते हुए एक झंडा भी फहराया।

स्वराज की माँग

दिसंबर, 1908 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कैक्सटन हॉल में एक अधिवेशन का आयोजन हुआ। वहाँ मैडम कामा ने 'बहिष्कार' प्रस्ताव पर भाषण देने के साथ-साथ 'स्वराज' की माँग भी रखी।

वीर सावरकर ने 'स्वराज' शब्द की पूर्ण परिभाषा देते हुए कहा कि इसका अर्थ है 'भारत की पूर्ण राजनीतिक आजादी' यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुआ।

इसके अतिरिक्त एक और प्रस्ताव रखा गया, आगामी सुधारों से भारत को कोई लाभ होने की उम्मीद नहीं थी। यह भी कहा गया कि वे सुधार भारत में सांप्रदायिक तनाव का कारण बन सकते हैं।

गुरु गोविंद सिंहजी का जन्मदिवस

29 दिसंबर को गुरु गोविंद सिंहजी का जन्मदिवस मनाने के लिए एक दूसरी सभा आयोजित की गई। यहाँ भी सावरकर ने मंच सँभाला। उन्होंने सभा को संबोधित किया कि हमें गुरु गोविंद सिंह के वीरतापूर्ण संघर्ष का अनुसरण करना चाहिए। सभा ने करतल ध्वनि से उनके शब्दों का अनुमोदन किया। इस सभा में सावरकर के अतिरिक्त मैडम कामा, विपिनचंद्र पाल व लाला लाजपत राय भी उपस्थित थे।

इस कार्यक्रम में लिया गया सामूहिक चित्र आज भी ब्रिटिश-संग्रहालय के समाचार पुस्तकालय में देखा जा सकता है। उस चित्र में सभी व्यक्तियों ने सिर पर साफा बाँधा है तथा पृष्ठभूमि में सतश्री अकाल लिखित बैनर के अलावा दाएँ-बाएँ, दो झंडे भी दिख रहे हैं। इनमें से एक सिक्खों का है तथा दूसरा भारतीयों का...।

भारत के हिंदू व मुसलमान

मैडम कामा के भाषणों में विविध विषय मुखरित हुए। वे देश की स्वतंत्रता के अलावा राष्ट्रीय एकता व अखंडता पर भी अपने विचार प्रकट करती थीं।

हमें गुप्तचरों की अनेक रिपोर्टों से उनके विषय में प्रामाणिक जानकारी मिलती है। उसके

अनुसार ऐसी ही एक सभा 20, फरवरी 1909 में हुई थी।

इसका विषय था : 'भारत में हिंदुओं व मुसलमानों के संबंध'।

मैडम कामा ने हमेशा की तरह मंच पर पहले अपना झंडा फहराया, फिर उसे दीवार पर लगाकर श्रोताओं से बोलीं—

"...हमें हिंदुओं की अपेक्षा मुसलमान कहीं पसंद हैं, क्योंकि वे कहीं मजबूत और लड़ाकू हैं, हिंसा का रास्ता अपनाना पड़ा तो ऐसे ही लोगों की जरूरत होगी।

शक्ति प्रदर्शन व हिंसा का सहारा न लिया तो आजादी हमारे लिए सिर्फ एक सपना बनकर रह जाएगी—स्वतंत्रता पाने में सफलता या असफलता आपके ही हाथ में है। अंग्रेजों का साथ छोड़ दो, देश आजाद हो जाएगा। हमें अंग्रेजों की अधीनता में काम करने के बजाय अपनी कला, उद्योग तथा व्यापार का विकास करना चाहिए—सभी देशवासी, चाहे वे किसी भी धर्म या संप्रदाय से हों, उन्हें आपसी भाईचारे को मजबूत बनाना होगा, तभी स्वतंत्रता का लक्ष्य पाने में सफल हो पाएँगे...।"

एक सच्चा बलिदान

‘मैं यह मानता हूँ कि मैंने एक अंग्रेज का खून बहाया है और वह इसलिए बहाया है कि मैं भारत के देशभक्त नौजवानों को अमानवीय रूप से फाँसी पर लटकाए जाने या आजन्म काले पानी की सजा देने का विरोध कर सकूँ।

इस प्रयत्न में मेरी अंतरात्मा ही मेरी परामर्शदाता रही है—मैं खुली लड़ाई नहीं लड़ सकता था, इसलिए मैंने अचानक आक्रमण किया।

हिंदू होने के नाते मेरा यह मानना है कि मेरे देश के प्रति किया गया अपराध ईश्व र का अपमान है—मुझ जैसे धनहीन व बुद्धिहीन व्यक्ति के पास अपने रक्त के अतिरिक्त मातृभूमि को समर्पित करने के लिए और क्या था? इसी कारण मैं मातृवेदी पर अपनी रक्तांजलि अर्पित कर रहा हूँ—

मैं भारतीयों को मरकर दिखा रहा हूँ और मुझे अपनी शहादत पर गर्व है...। ईश्व र से प्रार्थना है कि मेरा अगला जन्म भी भारतमाता की पवित्र गोद में हो और जरूरत पड़ने पर मैं देश के काम आऊँ। मेरे जन्म और बलिदान का यह क्रम उस समय तक चलता रहे, जब तक भारतमाता आजाद न हो जाएँ।

मदन लाल धींगरा!’’

नवयुवक क्रांतिकारी मदनलाल धींगरा उन भारतीयों में से थे, जो भारत से दूर रहकर भी अपनी मातृभूमि के प्रति कर्तव्य को भूले नहीं थे। भारत के अमृतसर शहर के संपन्न खत्री परिवार का लड़का मदन लंदन में रहकर पढ़ाई कर रहा था। भारत में पिता व भाई नामी डॉक्टर थे। लंदन में मदन को इंजीनियरिंग की शिक्षा पाने के लिए भेजा गया था, किंतु मदन के लिए तो ईश्व र ने कुछ अलग ही विधान रच रखा था।

समारोह में भाग

मदन को रहने के लिए 'इंडिया हाउस' में जगह मिली। यह स्थान इंग्लैंड में भारतीय क्रांतिकारियों का अड्डा माना जाता था। वहीं मदन की भेंट सावरकर से हुई।

1857 के प्रथम भारतीय स्वाधीनता संग्राम की अर्द्धशताब्दी का समारोह मनाया जा रहा था। सभी भारतीयों को चोरी-छिपे निमंत्रण भेजे गए। मैडम कामा ने भी बहुत-सा धन एकत्रित कर शहीदों के पीड़ित परिवारों के लिए बने कोष में दिया। समस्त भारतवासी सच्चे दिल से अमर शहीदों को श्रद्धांजलि देने के लिए एकत्र हुए थे। विद्रोह के वीरों व वीरांगनाओं को याद किया गया। उसके पश्चात् त्याग करने की शपथ ली। सभी ने अपनी एकत्रित धनराशि कोष में दी। इस समारोह के अंत में प्रसाद की तरह चपातियाँ बाँटी गईं। सावरकर ने 'ओ मास्टर्स' शीर्षक से शहीदों के नाम एक पत्र पढ़ा। इस पत्र में लिखा था—

"ओ शहीदो! आज 10 मई है। 1857 के स्मरणीय वर्ष में आज ही के दिन तुमने भारत के युद्ध क्षेत्रों में पहला स्वतंत्रता संग्राम छेड़ा था।

ओ शहीदो...जब तक क्रांति, गुलामी को मिटाकर स्वतंत्रता को सिंहासन पर नहीं बिठा देती, तब तक 1857 की लड़ाई समाप्त नहीं होगी—क्रांति के युद्ध में संधि नहीं होती या तो आजादी मिलती है या फिर मृत्यु...।

ओ बेचैन शहीदो! पचास वर्ष बीत चुके हैं, लेकिन हम अपने हृदय के रक्त से लिखकर शपथ लेते हैं कि तुम्हारी हीरक जयंती तक हम तुम्हारी कामना अवश्य पूरी कर देंगे। ओ शहीदो...हम तुम्हारे रक्त का बदला लेकर रहेंगे...।"

यह सुनकर मदन भी जोश से भर उठा। देशभक्ति की तीव्र भावना ने उसे वशीभूत कर दिया था। समारोह में भाग लेनेवालों को स्मृतिचिह्न के रूप में बैज बाँटे गए।

मदनलाल बड़े गर्व से कोट में बैज लगाकर कक्षा में पहुँचा तो अंग्रेज प्राध्यापक ने बैज निकालने को कहा। मदन के मना करने पर कक्षा में ही सहपाठियों से हाथापाई हो गई। यह घटना उसके दिल को बुरी तरह कचोट गई। क्या अपने ही देश के शहीदों के प्रति सम्मान प्रकट करना, उनकी याद को ताजा करना और उनसे प्रेरणा लेना कोई अपराध था?

सावरकर से मित्रता

मदन ने एक दिन सावरकर के सामने रोष प्रकट कर ही दिया। सावरकर तो यूँ ही भारतीय नौजवानों में क्रांति की अलख जगाने में जुटे थे। उन्होंने मदन को बताया कि वहाँ सर कर्जन वायली ही भारतीयों के पीछे पड़ा रहता है। उनकी जासूसी करवाता है। उनके खिलाफ साजिशें रचता है और अंग्रेज छात्र उसी के बल पर भारतीय छात्रों का अपमान करते हैं।

मदन ने मन-ही-मन वायली को खत्म करने की ठान ली। उसने सावरकर से अपनी इच्छा व्यक्त की तो उन्होंने उस क्रांतिवीर की परीक्षा ली। जब उसे खरा पाया तो अपना पूरा समर्थन देने का वादा भी किया।

लक्ष्य की ओर

मदनलाल ने 'इंडिया हाउस' छोड़ दिया व कहीं और रहने लगा। साथियों को उसके इस बदलाव पर थोड़ी हैरानी भी हुई, लेकिन वे उसकी योजना कहाँ जान सकते थे। मदनलाल निशाना लगानेवाले क्लब का सदस्य बन गया। वह वहाँ नियमित रूप से निशाना लगाने का अभ्यास करता था।

यहाँ तक कि उसने सर कर्जन वायली से मित्रता का बहाना भी तलाश लिया। ऊपरी तौर पर उसने यही दिखाया कि वह उन नौजवानों में से है, जो अंग्रेजी संस्कृति के पुजारी व साम्राज्य के भक्त हैं।

वायली को लगता था कि उससे इंडिया हाउस की गुप्त खबरें मिल सकती हैं, अतः वह अवसर पाते ही उससे भेद उगलवाने की कोशिश करता। सावरकर और मदन की योजनानुसार इंडिया हाउस की वे बातें ही बताई जातीं, जिनसे वहाँ की गोपनीयता खतरे में न पड़े।

लंदन में ब्रिटिश भक्त भारतीयों की संस्था थी 'इंडियन नेशनल एसोसिएशन'। मदन इसका भी सदस्य बन गया। इसी संस्था के वार्षिकोत्सव में मदन ने वायली को मारने का फैसला कर लिया।

पूरा हुआ प्रतिशोध

रात को समारोह में कर्जन पहुँचा तो मदनलाल कुछ बात करने के बहाने उसके पास पहुँचा व उसके सीने में दो गोलियाँ दाग दीं। तीन गोलियाँ चेहरे पर मारीं। कावस्की लालकाका नामक भारतीय पारसी उसे पकड़ने को लपका तो उसे भी गोली का निशाना बनना पड़ा। कई लोगों ने अचानक उसे घेर लिया व बंदी बना लिया। मदन ने किसी पर वार नहीं किया, जबकि उसके पास एक भरा हुआ रिवॉल्वर व चाकू भी था।

अध्याय के आरंभ में जो वक्तव्य दिया गया, यह वही था, जो मदनलाल उस समय अपनी जेब में रखकर साथ ले गया था। तलाशी के वक्त उसे पुलिस ने जब्त कर लिया। सभी देशभक्त भारतीय उसकी वीरता से अभिभूत थे, लेकिन उसके पिता व भाई ने उससे अपने संबंध तोड़ने की सार्वजनिक घोषणा कर दी।

मदनलाल ने अदालत में साफ शब्दों में कहा कि वह कावस्की को मारना नहीं चाहता था,

फिर एक दूसरी पेशी में उसने कहा—

“मैंने जो कुछ भी किया, ठीक किया। अंग्रेजों को कोई हक नहीं कि वे भारत को अपने अधिकार में रखें...आप लोग मुझे मृत्युदंड दे सकते हैं। मेरी मृत्यु अंग्रेजी शासन के विरुद्ध विद्रोह की आग भड़काने के लिए हवा का काम करेगी।”

मदनलाल के इस वक्तव्य को तलाशी के समय पुलिस ने छिपा लिया था। उसकी एक प्रति सावरकर के पास थी। उन्होंने किसी तरह उसे समाचार-पत्रों में छपवा दिया।

मदनलाल को यह जानकर असीम संतोष हुआ कि उसकी आवाज जनता तक पहुँच गई। भारत के प्रत्येक नगर में भी वह ऐतिहासिक वक्तव्य सचित्र वितरित हुआ।

मातृभूमि की वेदी पर कुर्बान

मदनलाल धींगरा को सरकार ने फाँसी की सजा सुनाई। 17 अगस्त, 1909 को मदन अपने देश के लिए कुर्बान हो गया। इधर लंदन की पैंटोनविले जेल में मदन को फाँसी पर लटकाया जा रहा था और इधर सावरकर चौराहे पर खड़े प्रतियाँ बाँट रहे थे।

उन प्रतियों में लिखा था

“आज 1909 का 17 अगस्त का दिन है। इस दिन का महत्त्व प्रत्येक देशभक्त भारतीय के वक्ष पर खून से लिखा जाना चाहिए...मदन की आत्मा हम सबका पथ प्रदर्शन करेगी...उसका पवित्र नाम हमारे इतिहास के पृष्ठों को अलंकृत करेगा...।”

समूचे यूरोपीय देशों में यह खबर फैल गई। आयरलैंड में समाचार-पत्रों ने मदनलाल धींगरा का चित्र प्रकाशित करते हुए लिखा था—“आयरलैंड मदनलाल धींगरा को श्रद्धांजलि अर्पित करता है, जिसने देश के लिए अपना बलिदान कर दिया...।”

वंदेमातरम् ने अपने प्रथम अंक में लिखा—

“अमर धींगरा वे वीर थे, जिनके उपास्य शब्दों व कृत्यों का शताब्दियों तक सच्चे हृदय से ध्यान रखना चाहिए...इंग्लैंड समझता है कि उसने उन्हें मार दिया है, किंतु वे वास्तव में हमेशा जीवित रहेंगे, उन्होंने भारत में अंग्रेजों की प्रभुसत्ता को घातक चोट पहुँचाई है...।”

मैडम कामा अमर शहीद मदन को कभी भुला नहीं पाईं। उन्होंने मदनलाल धींगरा के नाम पर ‘मदन तलवार’ नामक पत्र निकाला। बर्लिन से निकलनेवाला यह पत्र क्रांतिकारी विचारधारा को प्रसारित करता था।

एक अंक में उन्होंने लिखा—

‘‘अगस्त हमारे लिए पवित्र स्मृतियों का महीना है। पहले वीर खुदीराम बोस हमसे विदा ले गए और फिर इसी महीने की 17 तारीख को मदनलाल धींगरा शहीदों के पदचिह्नों पर चलते हुए इस दुनिया से कूच कर गए...।’’

मैडम कामा वर्षों बाद भी मदनलाल धींगरा की शहादत को भूली नहीं। वे उन्हें अपने सगे पुत्र-सा स्नेह करती थीं। इन अनजाने लोगों को एक सूत्र में जिसने बाँधा था, वह थीं भारतमाता। ये सब भारतमाता के पुत्र-पुत्रियाँ थे, जो अपने देश से दूर विदेश में अनेक कष्ट सहते हुए भी अपने देश की स्वतंत्रता के लिए कृतसंकल्प थे।

1916 में डॉ. भट्टाचार्य की भेंट मैडम कामा से हुई थी। उन्होंने इस भेंट का वर्णन ‘यूरोपीय भारतीयेक विप्लवेर साधना’ में करते हुए कहा—

‘‘मैडम कामा की आँखों में मदनलाल धींगरा के लिए आँसू आ गए और उन्होंने उनके अतुलनीय आत्मत्याग की प्रशंसा की...।’’

मदनलाल न तो मैडम कामा के कोई आत्मीय थे और न ही बंधु-बांधव, किंतु वे क्रांति-पुत्र तो थे ही। ऐसे में क्रांति की जननी का उनके प्रति मोह स्वाभाविक ही था।

सावरकर के लिए

सावरकर बंदी बने

जून, 1909 में सावरकरजी के भाई को बंदी बना लिया गया। उन पर उत्तेजक कविता लिखने व छापने का आरोप लगा था। सावरकर ने शपथ ली कि वे उस अत्याचार का प्रतिशोध अवश्य लेंगे। यद्यपि मदनलाल धींगरा ने कर्जन वायली की हत्या करके उनकी शपथ पूरी कर दी।

भारत में सावरकर के संबंधियों पर अत्याचार किया गया। उन पर मुकदमे चलाए गए। उनकी जायदाद जब्त कर ली गई। इधर मदनलाल धींगरा भी फाँसी पर चढ़ा दिए गए। क्रांतिकारियों का केंद्र 'इंडिया हाउस' भी बंद हो गया। कभी यह समय था, जब सावरकर के नेतृत्व में वह स्थान बैठकों, भाषणों व चर्चाओं में व्यस्त रहता था। बाद में अंग्रेजों ने उसके अस्तित्व का नामोनिशान तक मिटा दिया।

गुप्तचर हाथ धोकर सावरकर के पीछे पड़े थे। उनके भाई को आजीवन निर्वासन का दंड मिल चुका था। सावरकर कभी एक जगह छिपते तो कभी दूसरी जगह। ऐसे समय में मैडम कामा ने उनका बहुत ध्यान रखा। उन्हें मातृवत् सेवा दी।

इधर ब्राउनिंग पिस्तौलों वाले मामले ने तूल पकड़ रखा था। पेरिस में परेशान व विपदाग्रस्त सावरकर को मैडम कामा के घर में आश्रय मिला। कुछ समय बाद सावरकर ने लंदन जाने का निर्णय लिया। मित्रों ने उन्हें वहाँ से कहीं न जाने का सुझाव दिया, किंतु उन्होंने अनसुना कर दिया। पेरिस से उन्हें विदाई देनेवाले मित्रों को याद करते हुए सावरकर ने लिखा—

"उनमें मैंने दो ऐसे व्यक्ति देखे, जो बाहर से काफी शांत दिख रहे थे, लेकिन वास्तव में उदास थे—मैडम कामा व हरदयाल; मानो वे जानते थे कि क्या होनेवाला है?"

सावरकर के स्वागत के लिए लंदन के विक्टोरिया रेलवे स्टेशन पर पुलिस सारा प्लेटेफॉर्म घेरे तैनात थी। स्टेशन के बाहर भी पुलिस मौजूद थी। उन्हें आदेश मिला था कि अपराधी भागने का प्रयत्न करे तो उसे गोली से उड़ा दिया जाए।

पुलिस उस महान् क्रांतिकारी के लिए काफी चौकसी बरत रही थी। ज्यों ही रेलगाड़ी स्टेशन पर रुकी, पुलिस की नजरें उसमें से निकलनेवाले हर भारतीय नवयुवक पर पड़ने लगीं। सावरकर ने ज्यों ही तीसरे दरजे के डिब्बे से स्टेशन पर कदम रखा, बिना कुछ कहे-सुने उन्हें हथकड़ियों-बेड़ियों में जकड़ दिया गया। उन्हें बंदी बनाने से पहले कोई वारंट तक दिखाने की औपचारिकता नहीं निभाई गई।

वे ब्रिम्सटन जेल भेज दिए गए। लंदन व भारत की पुलिस अपनी इस उपलब्धि पर फूली नहीं समा रही थी। अगले दिन समाचार-पत्रों ने मुख्य पृष्ठ पर सावरकर की गिरफ्तारी का समाचार छापा। सभी क्रांतिकारी साथी यह पढ़कर चिंतित हो उठे।

जेल से भगाने की योजना

मैडम कामा व अन्य क्रांतिकारी साथी जानते थे कि यदि सावरकर पर भारत में मुकदमा चला तो वहाँ केवल मुकदमे का दिखावा होगा। उन्होंने अपनी पूरी कोशिश लगा दी कि सावरकर को भारत न भेजा जाए। लंदन की अदालत में सावरकर पर मुकदमे चले, लेकिन वहाँ से आदेश मिले कि अभियुक्त को भारत भेज दिया ेजाए।

उन्हें भगाने के लिए क्रांतिकारी नाना प्रकार की योजनाएँ बनाने लगे। उन्होंने योजना बनाई कि सावरकर को किसी तरह जेल से निकाल लिया जाए व उन्हीं की शक्ल जैसा कोई आदमी उनके स्थान पर जेल में रहे, लेकिन योजना विफल रही।

फिर आयरलैंड के क्रांतिकारियों के साथ मिलकर योजना बनी कि सावरकर जिस गाड़ी में कोर्ट जाते हैं, उस पर धावा बोलकर उन्हें छुड़ा लिया जाए। योजना पक्की थी और तैयारियाँ भी पूरी थीं, किंतु अधिकारी उन्हें उस दिन दूसरे रास्ते से कोर्ट ले गए और सारी योजना खटाई में पड़ गई।

‘मौर्य’ से निकालने की योजना

सरकार चौकस हो गई। उसने कहा कि सावरकर को कड़ी निगरानी में ‘मौर्य’ जहाज से भारत ले जाया जाए। तेल, कोयला व जरूरत की चीजें लेने के अलावा जहाज किसी भी बंदरगाह पर फालतू न ठहरे, इस निर्देश के साथ यात्रा आरंभ हुई।

मैडम कामा व क्रांतिकारी अय्यर के नेतृत्व में सबने योजना बनाई कि जब जहाज फ्रांस में रुके तो वे सावरकर को वहाँ से निकाल लें। सावरकर को भी गुप्त रूप से इस बारे में बता

दिया गया।

जब जहाज फ्रांस के निकट पहुँचने वाला था तो सावरकर ने शौचालय जाने का संकेत किया। शौचालय में भी बड़ा-सा शीशा लगा था, ताकि सिपाही बाहर से उन पर निगरानी रख सकें। सावरकर ने अपना कोट उतारकर आईने पर डाल दिया और शौचालय की दीवार के छेद में घुस गए। एक सिपाही को आईने पर लटकता कोट देखकर शक हुआ। उसने भीतर झाँका तो सावरकर समुद्र में कूदने की तैयारी में थे। वह चिल्लाया ‘‘अरे! क्या कर रहा है रुक तो!’’

लेकिन देखते-ही-देखते सावरकर उस छोटे-से छेद से समुद्र में कूद गए। सिपाही ने शौचालय का दरवाजा तोड़ दिया। उसकी चिल्लाहट से सभी चौकन्ने हो गए।

इधर सावरकर समुद्र के खारे पानी में तेजी से तैर रहे थे और ऊपर से सिपाही गोलियाँ बरसा रहे थे। जहाज के कप्तान ने समुद्र में ड्रा-ब्रिज डलवा दिया। सिपाही वहाँ से गोलियाँ चलाने लगे, लेकिन सावरकर उनकी पहुँच से दूर जा चुके थे।

फ्रांस में हुआ अन्याय

वीर सावरकर का व्यायाम व अभ्यास काम आया और वे फ्रांस के तट तक आ पहुँचे। बंदरगाह पर अंग्रेज सिपाही उनके पीछे-पीछे चोर-चोर कहते भाग रहे थे। सावरकर ने फ्रांसीसी सिपाहियों को टूटी-फूटी भाषा में समझाना चाहा कि वे कोई चोर नहीं, भारतीय क्रांतिकारी हैं और अंग्रेज सिपाही उन्हें जबरन पकड़ रहे हैं, फ्रांस की भूमि पर वे उन्हें पकड़ने का अधिकार नहीं रखते। सावरकर का कहना बिलकुल ठीक था। वे राजनीतिक कैदी थे, उन्हें राजनीतिक शरण मिलनी चाहिए थी। अंग्रेज सिपाहियों के इस कृत्य से अंतरराष्ट्रीय अधिकार का स्पष्ट उल्लंघन हो रहा था।

इधर मैडम कामा व अय्यरजी भी आ पहुँचे। दरअसल जब सावरकर पानी में कूदे तो जहाज को भी अपनी गति बढ़ानी पड़ी। इस प्रकार वह समय से पहले तट पर आ लगा। इधर मैडम कामा व अय्यरजी निर्धारित समय पर सावरकर को लेने पहुँचे।

फ्रांसीसी सिपाहियों के सामने सावरकर आत्मसमर्पण कर चुके थे। अब ब्रिटिश सरकार को कोई हक नहीं था कि उन्हें बंदी बनाए, किंतु सारे नियम-कानूनों को ताक पर रख दिया गया। वे फिर से बंदी बनाकर जहाज में डाल दिए गए। वीर विनायक दामोदर सावरकर एक कैदी के रूप में भारत पहुँचे।

सावरकर मुक्ति का प्रयास

सावरकर को भारत में नासिक जेल में रखा गया। इधर मैडम कामा व उनके साथी भी चुप

बैठनेवालों में नहीं थे। अंग्रेज उस राजनीतिक शरणागत को जबरन कैसे ले जा सकते थे, जबकि वह फ्रांस की भूमि पर पहुँच गया था।

मैडम कामा व लाला हरदयाल ने फ्रांसीसी समाजवादी नेता जो जारविस की सहायता से फ्रांस में आंदोलन किया ताकि सावरकर की मुक्ति हो सके। मार्सलीज के महापौर ने भी मामले की जाँच की। यद्यपि फ्रांसीसी सरकार चाहती थी कि अंग्रेज सावरकर को उन्हें लौटा दे, किंतु वह कोई सीधी कार्यवाही नहीं करना चाहती थी।

कार्ल मार्क्स के पौत्र फ्रांस में समाजवादी पत्र 'लघु मानती' चलाते थे। मैडम कामा ने उन्हें तार द्वारा यह सूचना भिजवाई। उन्होंने बड़े शीर्षक के साथ समाचार प्रकाशित किया।

फ्रांस के कई पत्रों ने फ्रांसीसी अधिकारियों के प्रति रोष प्रकट किया। उन्होंने जोरदार शब्दों में कहा कि सावरकर को मुक्त किया जाना चाहिए।

मैडम कामा व लाला हरदयाल के काफी दबाव के फलस्वरूप हेग के अंतरराष्ट्रीय न्यायालय ने मुकदमा अपने हाथ में ले लिया, पर अंग्रेज सरकार अपनी जिद पर अड़ी थी।

काले पानी की सजा

भारत में सावरकर पर तीन मुकदमे एक साथ चले। उन पर अंग्रेज अधिकारियों की हत्या का आरोप था, यह भी सिद्ध कर दिया गया कि वे मदनलाल धींगरा के साथी थे। उन्हें आजन्म कारावास का दंड मिला।

दूसरे मुकदमे में सिद्ध कर दिया गया कि जिन पिस्तौलों से मि. जैक्सन व मि. ऐश की हत्या हुई थी, वे उन्होंने ही अपने रसोइए चतुर्भुज अमीन के हाथों भेजी थीं। चतुर्भुज सरकारी गवाह बन गया, इसलिए फैसला सुनाने में भी देर नहीं लगी। यहाँ भी उन्हें आजीवन कारावास का दंड दिया गया।

यद्यपि मैडम कामा ने उन्हें बचाने के लिए बंबई के प्रसिद्ध वकील वैत्तिस्ता की सेवाएँ लीं। स्वयं पिस्तौलें भेजने का आरोप अपने ऊपर ले लिया, लेकिन सावरकर की सजा को रोक नहीं सकीं। वीर सावरकर ने दो बार आजन्म कारावास की सजा सुनकर व्यंग्य से कहा था —

''मुझे प्रसन्नता है कि मुझे दो जन्म की काले पानी की सजा देकर ब्रिटिश सरकार ने हिंदुओं का पुनर्जन्म का सिद्धांत तो मान ही लिया।''

वीर सावरकर की सारी संपत्ति जब्त कर ली गई व उन्हें निर्वासित कर अंडमान जेल भेज दिया गया।

सावरकर के मामले में हाथ आई निराशा से मैडम कामा टूट-सी गई थीं। उन्होंने सावरकर

के मामले की पैरवी में काफी धन व समय लगाया था, किंतु उन्हें कभी उसका अफसोस नहीं हुआ। उन्होंने जो भी किया, अपने पुत्र के लिए किया। वे 'क्रांति की जननी' थीं, भला इस तथ्य को कैसे भुला देतीं।

यहाँ तक कि बाद में भी वे सावरकर के परिवार की सहायता करती रहीं। उनके विषय में पावलोविच लिखते हैं—"जब मैडम कामा सावरकर को जेल से छुड़ाने के लिए अविरल रूप से जनमत तैयार कर रही थीं तो अपने बुढ़ापे व गिरती सेहत की परवाह न करते हुए, स्वयं समाचार-पत्रों के कार्यालयों में जाकर पत्रकारों से अनुरोध करती थीं कि वे सावरकर की मुक्ति के विषय में छापें...।"

वंदेमातरम् पत्र

कर्जन वायली की हत्या के बाद परिस्थितियाँ काफी बदल गईं। ब्रिटिश गुप्तचर पहले से भी अधिक उग्र हो उठे। श्यामजी कृष्ण वर्मा से पूछताछ हुई कि क्या मदनलाल धींगरा 'इंडिया हाउस' में रहता था। सरकार को संदेह था कि वे भी वायली की हत्या के षड्यंत्र में शामिल थे।

श्यामजी ने दबाव से तंग आकर इंडिया हाउस की इमारत बेच दी। उसके पश्चात् क्रांतिकारियों के लिए किसी ऐसे स्थान की व्यवस्था नहीं की जा सकी। क्रांतिकारी साथी उनसे दूर छिटक गए और पेरिस भारतीय क्रांतिकरियों के लिए नया केंद्र बना।

अब मैडम कामा उनकी सर्वमान्य नेता थीं और राणाजी विश्व स्त सहयोगी।

सरकार ने क्रांतिकारी गतिविधियों पर रोकथाम लगाने के लिए विस्फोटक उपादान अधिनियम, भारतीय दंड-कानून संशोधन अधिनियम व प्रेस अधिनियम आदि बनाकर कड़े कदम उठाए।

ब्रिटिश अधिकारियों के प्रयासों के बावजूद फ्रांसीसी अधिकारियों ने मैडम कामा को उनके हवाले नहीं किया। वे चाहती थीं कि फ्रांस पर कोई संकट न आए इसलिए उन्होंने अपने पत्र के प्रकाशन के लिए दूसरा स्थान चुना।

वंदेमातरम् का प्रकाशन सितंबर 1909 में आरंभ हुआ। उसका संपादन व मुद्रण जेनेवा से होता था। बाद में वह राटर्डम से निकलने लगा।

लाला हरदयालजी भी उन दिनों पेरिस में थे। मैडम कामा ने पत्र के संपादन का भार उन्हें सौंप दिया। इसी पत्र के माध्यम से मैडम कामा ने अंग्रेजों से भारत छोड़ने की माँग की। उनकी नीति सही मायनों में क्रांतिकारी थी।

भारत में बिपिनचंद्र पाल द्वारा ‘वंदेमातरम्’ पत्र की स्थापना हुई थी व अरविंद घोष उसे संपादित करते थे, किंतु प्रेस अधिनियम के कारण उन्हें पत्र बंद करना पड़ा। उसी पत्र की स्मृति में मैडम ने अपने पत्र का यह नामकरण किया था।

‘वंदेमातरम्’ के मुख्य पृष्ठ पर दो चित्र होते थे। ‘भारत का राष्ट्रीय ध्वज’ तथा ‘भारतमाता’। भारतमाता के चरणों में श्लोक लिखा होता :

अथ चेत्वमिमं धर्म्य संग्राम्य न करिष्यसि।

ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापभवाप्स्यति ससि।

(इसके बाद भी यदि तुम धर्मयुद्ध नहीं करते तो इससे स्वधर्म कीर्ति को छोड़कर पाप के भागी होगे।)

राष्ट्रीय ध्वज के नीचे लिखा रहता था—‘भारतीय संस्कृति का मासिक मुख-पत्र’। उसके नीचे लिखा होता था—

‘‘अतः आनंद! अपने-आपके लिए तुम ही दीप बनो। बाहर के किसी आश्रय की तलाश मत करो। अपने परिश्रम से निर्वाण पाओ...।’’ (गौतम बुद्ध)

वंदेमातरम् का कोई वार्षिक चंदा नहीं लिया जाता था, इसलिए भारतीय व क्रांतिकारी स्वेच्छा से प्रकाशन व्यय देते थे। मैडम कामा पर प्रमुख आर्थिक दायित्व था। पूरे यूरोप में तो पत्र पहुँचता ही था। भारत में भी इसे गुप्त रूप से भेजा जाता था। इस पत्र ने प्रवासी भारतीयों के हृदय में देशभक्ति जगाने का सराहनीय प्रयास किया।

प्रेस अधिनियम लागू होने पर भी मैडम कामा का ‘वंदेमातरम्’ जारी रहा, क्योंकि वह अंग्रेज सरकार की पहुँच से बाहर था। मैडम कामा की डाक पर नजर रखी जाने लगी, किंतु उन्होंने दूसरा तरीका खोज निकालने में देर नहीं की।

मैडम कामा ने अमर शहीद धींगरा की स्मृति में भी एक पत्र निकाला था, जो ‘मदन तलवार’ के नाम से था।

मैडम कामा का दुःसाहस

मानवीय रूप

मैडम कामा की निडरता व स्पष्टवादिता वास्तव में प्रशंसनीय थी। जिस महिला ने अपने लक्ष्य के लिए तमाम सांसारिक सुखों व प्रलोभनों को तिलांजलि दे दी हो, गृहस्थ जीवन के सुख को त्याग स्वेच्छा से 'क्रांति जननी' बनी हो, उसका ऐसा व्यवहार व आचरण स्वाभाविक ही था। अपने क्रांतिकारी साथियों की 'माँ' के रूप में वे उन पर आनेवाले हर भावी संकट को टालने का प्रयास करतीं। जरूरत पड़ने पर आर्थिक सहायता देतीं, कोई रोगी हो जाता तो उसकी देखभाल का उत्तरदायित्व लेतीं।

सावरकर बीमार पड़े तो उन्होंने ही स्वास्थ्य लाभ करने में सहायता दी। लाला हरदयाल आर्थिक तंगी के दौर से गुजरे तो उनकी देखभाल की पूरी जिम्मेदारी लेनेवाली मैडम कामा ही थीं मानो भारत माँ के सपूतों की सेवा का भार उन्होंने स्वयं ले लिया था। वे सबकी संबंधी थीं। कठिन-से-कठिन समय में सगे-संबंधी भी साथ छोड़ देते हैं, किंतु वे ऐसी संबंधी थीं, जो कठिन समय आने पर सगों से भी ज्यादा सगी बन जाती थीं। पूरा देश उनका अपना ही कुटुंब था। डॉ. भूपेंद्रनाथ दत्त की पुस्तक 'अप्रकाशित राजनीतिक इतिहास' से पता चलता है कि वहाँ रहनेवालों के मन में मैडम कामा की क्या छवि थी।

मास्को में कोई महिला सम्मेलन होनेवाला था। उसके लिए श्रीमती एलविन राय को प्रबंध करना था। उन्होंने कहा—

"मुझसे एक सच्ची हिंदू महिला को लाने के लिए कहा गया है। मैं कोशिश करूँगी कि पेरिस से मैडम कामा को ला सकूँ।"

यद्यपि मैडम कामा अपनी बीमारी के कारण उस सभा में नहीं जा सकीं, किंतु लोगों के मन में उनके प्रति प्रेम व आदर का परिचय तो मिल ही गया।

दुःसाहसी मैडम कामा

मैडम कामा का स्नेही व मानवीय रूप तो स्वीकृत था, किंतु कई बार वे अपनी भावुकता में आकर ऐसा दुःसाहस कर डालती थीं कि देखनेवाले दंग रह जाते। उनके मित्र आचार्य का कहना था—

‘‘मैडम कामा ऐसे बच्चे के समान थीं, जो इस बात को जानने की परवाह नहीं करता कि आग से खेलने का क्या अर्थ होता है। वे सीधी, सहज और स्पष्ट बात करती थीं। वे अपने बोलने और लिखने से न केवल सम्मोहित करती थीं, बल्कि आहत और विस्मित भी कर देती थीं...।’’

डॉ. अविनाशचंद्र भट्टाचार्य ने अपनी बांग्ला पुस्तक ‘यूरोपेय भारतीयेर विरलवेर साधना’ में उनकी ऐसी ही दुःसाहसपूर्ण घटना का उल्लेख किया है—

‘‘राणाजी व सावरकर उनके क्रांतिकारी साथी थे। राणाजी भारतीय क्रांतिकारियों को रिवॉल्वर व पिस्तौल आदि भिजवाते थे। ऐसी किसी भी योजना में सभी मिलकर साथ देते।

उन दिनों नासिक हत्याकांड के एक मुकदमे में सावरकर अभियुक्त थे। मुकदमे की सुनवाई के दौरान एक नया ही मामला सामने आ गया। दरअसल कुछ समय पूर्व कन्हारे ने नासिक में मैजिस्ट्रेट जैक्सन की गोली मारकर हत्या की थी। 1911 में क्रांतिकारी अय्यर ने टिन्नेवैली के न्यायाधीश मि. ऐडा को गोली मारकर मौत की नींद सुला दिया था।

मामलों की छानबीन के बाद पुलिस इस निष्कर्ष पर पहुँची कि हत्या में प्रयुक्त पिस्तौल सावरकर ने अपने रसोइए चतुर्भुज अमीन द्वारा लंदन से भारत भेजी थी। वे पिस्तौलें मैडम कामा द्वारा दी गई आर्थिक सहायता से खरीदी गई थीं। संभवतः धींगरा को भी सावरकर ने ही रिवॉल्वर दिया था।

चतुर्भुज अमीन बंदी बना लिया गया। वह पुलिस का घोर अत्याचार सह न सका तो उनका मुखबिर बन गया। सरकारी गवाह के रूप में उसने बयान दिया—

‘‘मैं ये पिस्तौलें पेरिस में श्री राणा के मकान से लाया था। ये उन्हीं का संदूक है।’’

मुकदमे में सावरकर व राणा को फँसते देख मैडम कामा व्यग्र हो उठीं। वे कभी भी अपने साथियों की मदद करने से पीछे नहीं हटती थीं। उन्होंने बिना किसी से परामर्श लिये स्वयं ही एक योजना बना ली। वास्तव में वे पिस्तौल सावरकर और राणा ने ही राणा के संदूक में छिपाकर अमीन के हाथों बंबई भिजवाई थीं।

मैडम सीधा ब्रिटिश कॉउंसिल के दफ्तर आ पहुँची। अपना कार्ड भेजा व साथ ही यह भी लिख दिया ‘मि. जैक्सन व मि. ऐश की हत्या के विषय में सुराग देने के लिए’।

यह पढ़ते ही अधिकारी खुशी से झूम उठा। वे लोग इतने हाथ-पैर मारकर भी जिस गुत्थी को सुलझा नहीं पा रहे थे, मैडम कामा स्वयं उसे सुलझाने आ गई थीं। संभवतः उसे यह भी लगा कि मैडम आत्मसमर्पण करना चाहती हैं।

अधिकारी स्वयं उनकी आगवानी के लिए आ पहुँचा। मैडम कामा ने बयान दिया—

"मि. जैक्सन व मि. ऐश की हत्या जिन ब्राउनिंग पिस्तौलों से हुई, वे मैंने ही भारत भिजवाई थीं। यह सच है कि वह संदूक सरदार राणा के घर में था, किंतु इस विषय में न तो सावरकर को कोई जानकारी थी और न ही उन्हें। मैंने ही उस संदूक में रिवॉल्वर छिपा दिए, ताकि वे चतुर्भुज के माध्यम से भारत पहुँच जाएँ। वे दोनों निर्दोष हैं। पिस्तौल भेजने का उत्तरदायित्व मेरा ही है...।"

उनका बयान दर्ज करके रसीद दे दी गई। मैडम कामा ने बयान की प्रति भी बंबई के वकील को भेज दी, किंतु उनके या राणाजी के नाम कोई वारंट नहीं निकला। सावरकर के मुकदमे में जो अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उलझन चल रही थी, उसी को ध्यान में रखते हुए उनके बयान को नजरअंदाज कर दिया गया, किंतु इस घटना से उनके अप्रतिम साहस, आत्मत्याग व शौर्य का पता अवश्य चलता है।

रूसी क्रांति में रुचि

मैडम कामा व उनके क्रांतिकारी सहयोगी अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए किसी सिद्धांत की तलाश में थे व इसी प्रक्रिया में उनका ध्यान रूसी क्रांतिकारी आंदोलन की ओर गया। मैडम कामा रूसी क्रांति में दिलचस्पी लेने लगीं।

पेरिस में ही एक निर्वासित रूसी क्रांतिकारी मिखाइल पावलोविच रहते थे, वे उनके निकट संपर्क में थीं। उन्होंने ही मैडम कामा को रूसी क्रांति, उसके उद्देश्यों व समाजवादी आदर्शों की जानकारी दी।

मैडम कामा ने जान लिया था कि यूरोप का श्रमिक वर्ग भी भारत के राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन को समर्थन देता था। वे फ्रांस के समाजवादियों में शीघ्र ही घुल-मिल गईं व समाजवादी पार्टी की सदस्या बनीं। उन्होंने अपने सारे अध्ययन से नतीजा निकाला था कि स्वतंत्रता प्राप्ति की राह में व्यक्तिगत प्रयासों से कोई लाभ न होगा, जन आंदोलन या सामूहिक प्रयासों से ही सफलता पाई जा सकती है। पहले-पहल मैडम कामा रूसी नरोदनिक्स के इतिहास से आकर्षित हुईं, किंतु बाद में वे रूस की 1905 की क्रांति की कायल हो गईं।

जब वे 1907 में स्टुटगार्ट सम्मेलन में गई थीं तो वहाँ भी उन्होंने रूसी जनता के वीरतापूर्ण संघर्ष की प्रशंसा की थी।

‘‘हम उन रूसी कॉमरेडों के प्रति अपने भाईचारे की शुभकामनाएँ देते हैं, जो मुक्ति के लिए संघर्षरत हैं।’’

मैडम कामा के रूसी मित्र पावलोविच लिखते हैं—

‘‘मैडम कामा ने 1905 के रूसी आंदोलन में श्रमिक वर्ग की भूमिका जाननी चाही व मार्क्सवाद पर भी कुछ पुस्तकें पढ़ीं।

हालाँकि उनकी आयु ढल गई थी, लेकिन भीतरी मजबूती, उत्साह व जोश ज्यों-का-त्यों था, हमें मित्र बनते देर नहीं लगी।''

मैडम कामा वास्तव में एक सच्ची विश्व -बंधुत्ववादी थीं। 1917 की रूसी क्रांति से उनके मन में अनेक आशाएँ जगीं। वे चाहती थीं कि भारत भी उससे प्रेरणा ले। वे भारत तथा सोवियत रूस के बीच मैत्री का मोल भी जानती थीं या यूँ भी कह सकते हैं कि उन्होंने 1907 में ही इस महत्त्व को जान लिया था।

मैडम कामा, वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय, आचार्यजी, श्यामजी आदि उन रूसी क्रांतिकारियों से भी मिल चुके थे, जो जार के विरुद्ध खड़े हुए थे। भारत में भी रूसी क्रांति के तरीके अपनाने की चर्चा जोरों पर थी और धीरे-धीरे सर्वसम्मति से लोग इसे अपनाने लगे।

मैडम कामा ने काफी पहले इस जरूरत को समझ लिया था, इसलिए वे विदेश में जहाँ भी रहीं, रूसी क्रांतिकारियों से संपर्क साधे रखा। उन्होंने अपने साथियों को रूसी क्रांतिकारी तरीके अपनाने में हर संभव सहयोग दिया, ताकि वे अपने देश को अंग्रेजों की कैद से आजाद करा सकें।

उन्होंने फ्रांसीसी व रूसी सोशल डेमोक्रेट्स के साथ मिलकर एक समूह बना लिया, जो भारतीय क्रांतिकारियों को राजनीतिक शिक्षा का पाठ पढ़ाता था। इस समूह के सभी सदस्य भूगोल, इतिहास, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, धर्म, समाजवाद व साम्यवाद आदि विषयों पर गहरी पकड़ रखते थे। उनका मानना था कि औद्योगिक प्रगति से ही देश का अस्तित्व संभव हो पाएगा। कहा गया कि—

''यदि भारत दूसरे देशों की तरह स्वतंत्र व आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं होता, तो विश्व के समाजवादियों की इच्छाएँ कभी पूरी नहीं होंगी।''

गोर्की से संपर्क

रूसी क्रांतिकारी साहित्य को पढ़ने के दौरान ही मैडम कामा अनेक प्रगतिशील लेखकों से मिलीं। मैक्सिम गोर्की भी उनमें से एक थे। उन्होंने अपनी लेखनी के बल पर समाज को एक नई दिशा दी। उनकी साहित्यिक प्रतिभा अद्वितीय थी। मैडम कामा के आग्रह पर उन्होंने 'द सांग ऑफ द फैलकॉन का फ्रेंच अनुवाद भेजा, जिसे पढ़कर वे उत्साहित हो उठीं और कहा —

''यह तो वास्तव में किसी भी लेख या घोषणा से कहीं बेहतर है...।''

उन्होंने मैक्सिम गोर्की से संपर्क बनाए रखा। मैक्सिम गोर्की से भारतीय नेताओं का परिचय तो था, किंतु जनांदोलन में उनकी भूमिका को मैडम कामा ने पहचाना। गोर्की भी उनकी वीरता व देशभक्ति के कायल थे।

उन्होंने मैडम कामा से आग्रह किया—

‘‘आप हमारी रूसी पत्रिका ‘रशियन डेमोक्रेसी’ के लिए लेख लिखें। जिसका विषय हो —‘भारतीय महिला-भारत के स्वतंत्रता संग्राम में उसकी भूमिका’। हमारी रूसी महिलाएँ यह जानकर आपका आभार मानेंगी कि गंगा के तटों के निवासी, महान् भारत के लोकतंत्रवादी व महिलाएँ कैसे जीवनयापन व संघर्ष करते हैं।

मैडम कामा ने प्रत्युत्तर दिया—

‘‘मेरा सारा समय व ऊर्जा, देश व उसके संघर्ष को समर्पित है। यदि मैं उसके लिए कोई लेख लिख सकी, तो अपनी पूरी ऊर्जा लगा दूँगी।’’

मैडम कामा ने उन्हें ‘वंदेमातरम्’ व भारतीय क्रांतिकारी साहित्य की कुछ प्रतियों के अलावा अपना एक चित्र भी भेजा। उन्होंने उनसे पूछा कि यदि वे वीर सावरकर द्वारा लिखी गई पुस्तक ‘भारत का प्रथम स्वाधीनता संग्राम 1857’ पढ़ना चाहें तो उसे भेजने की व्यवस्था भी हो सकती है।

मैडम कामा का वह पत्र तथा चित्र, उस महान् रूसी लेखक के संग्रहालय में आज भी सुरक्षित है।

गोर्की से संपर्क टूटा

जब मिखाइल पावलोविच निर्वासन की अवधि समाप्त होने के बाद पेरिस लौट रहे थे तो मैडम कामा ने उन्हें गोर्की के नाम एक पत्र देकर कहा था कि उसे रूस में प्रकाशित करवा दिया जाए। वह पत्र कहीं खो गया और मैडम कामा चाहकर भी लेखक गोर्की से पुनः संपर्क नहीं कर पाईं। यदि वे दोनों संप्रेषण करते तो निश्चय ही कई ऐतिहासिक दस्तावेज सामने आते।

एक अंतहीन संघर्ष...

मैडम कामा का जीवन एक अंतहीन संघर्ष में बीता। जिस आयु में स्त्रियाँ मातृत्व सुख पाकर अपनी गृहस्थी में रम जाती हैं, उस आयु में वे खराब स्वास्थ्य के बावजूद क्रांतिकारियों के लिए चंदा एकत्र करतीं, विदेशियों के बीच भारत की स्वतंत्रता के लिए अलख जगातीं व अथक परिश्रम करती घूम रही थीं।

वीर सावरकर का साथ नहीं रहा था। इधर भारत में अंग्रेज सरकार को पक्का विश्व ास हो गया था कि मैडम कामा उनके साम्राज्यवाद के विरुद्ध प्रचार कर रही हैं। सरकार ने तब उन्हें भगोड़ा घोषित करके उनकी लाखों रुपए की संपत्ति जब्त कर ली। सरकार को भ्रम था कि शायद यह चोट मैडम कामा को झुकने पर विवश कर देगी, किंतु वे पूर्ववत् अपनी गतिविधियों में मग्न रहीं।

गुप्तचर विभाग की रिपोर्टों से पता चलता है कि मैडम कामा ने अंडमान जेल के क्रांतिकारी साथियों से पत्र-व्यवहार कायम रखा। वे आचार्यजी तथा अन्य क्रांतिकारियों से भी फोन या पत्र द्वारा संपर्क बनाए रखती थीं।

प्रथम विश्व युद्ध

1914 में प्रथम विश्व युद्ध आरंभ हुआ। मैडम कामा की व्यस्तता और भी बढ़ गई। उन्होंने हरदयालजी को तुर्कों का सहयोग पाने के लिए भेजने को राजी कर लिया। 'गदर' की प्रतियाँ वितरित करने में सहायता करने के साथ-साथ दुनिया-भर के क्रांतिकारियों से पत्र-व्यवहार भी जारी था। शरीर रोगी था और विशेषज्ञ उनकी बीमारी पकड़ नहीं पा रहे थे।

युद्ध के आरंभ में भारत से गई हिंदुस्तानी फौजें भी यूरोप के मोर्चों पर थीं। वे फ्रांस के बंदरगाह पर भी जाती थीं। उन दिनों वीरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय का पत्र 'तेगार्ड' प्रकाशित

होना था। मैडम कामा इन पत्रों में सैनिकों के नाम लेख लिखतीं कि वे अंग्रेजों के लिए न लड़ें, क्योंकि यह भारत का नहीं साम्राज्यवादी युद्ध है।''

फिर वे मार्सलीज छावनी तक जा पहुँचीं। वहाँ भी उन्होंने भारतीय सेना को समझाया कि वे अंग्रेजों के लिए लड़ने के बजाय शस्त्र समर्पण कर दें। उन्हें अपनी ही मातृभूमि को गुलाम बनानेवालों से लड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है।

1914 के इस युद्ध में फ्रांस, ब्रिटेन के मित्र राष्ट्रों में शामिल होने के कारण उसे पूरा सहयोग दे रहा था। उस पर दबाव डाला जाने लगा कि वह मैडम कामा की काररवाइयों पर रोक लगाए।

मैडम कामा पर आरोप लगा कि वे फ्रांस में रहकर ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध षड्यंत्र कर रही थीं। उनकी सभी गतिविधियों पर फ्रांस की सरकार ने प्रतिबंध लगा दिया।

एक गुप्तचर रिपोर्ट से पता चलता है कि एक पुलिस प्रीफेक्ट ने मैडम कामा को चेतावनी दी कि यदि उन्होंने अपनी गतिविधियाँ बंद न कीं तो परिणाम भयंकर हो सकते हैं। मैडम कामा ने उन्हें कोई काररवाई न करने का वचन दिया व जर्मन बंदियों से मिलने की आज्ञा चाही, किंतु उन्हें वह आज्ञा नहीं दी गई।

ब्रिटिश सरकार चाहती थी कि मैडम कामा को देश निकाला दे दिया जाए, किंतु उस समय मैडम कामा के रूसी मित्रों की सहायता काम आई। उन्होंने फ्रांस के समाजवादियों से संपर्क किया तथा यह अनुमति ले ली कि मैडम कामा फ्रांस में ही रह सकती थीं। उन्हें पेरिस से हटाकर विली नामक स्थान पर पुराने किले में नजरबंद कर दिया गया। वे तकरीबन वहाँ चार साल तक रहीं। उनका स्वास्थ्य बिगड़ता ही गया। उधर राणाजी ने भी इस नजरबंदी का गहरा मोल चुकाया। वे एक टापू पर नजरबंद थे, जहाँ उनके पुत्र व पत्नी की मृत्यु हुई।

निर्धनता व अकेलापन

युद्ध की समाप्ति पर उन्हें रिहा कर दिया गया, किंतु रोग ने शरीर को पूरी तरह से तोड़ दिया था। साथ ही वे निर्धनता की मार भी झेल रही थीं। सारी उम्र अपने धन से क्रांतिकारियों की सहायता करनेवाली मैडम कामा ने कभी भी अपने लिए किसी से कुछ नहीं माँगा। वे किसी-न-किसी तरह अपना गुजारा चलाती रहीं। हालाँकि तंगहाली ने जीवनशैली को काफी प्रभावित किया था, किंतु देशभक्ति की उमंग व जोश में कमी नहीं आई थी। वे बार-बार पेरिस में दल के संगठन का प्रयास करती रहीं।

ऐ मेरे प्यारे वतन...

यह गीत सुनते ही आँखों के आगे अनायास ही मैडम कामा का चित्र उभर आता है, जो वर्षों विदेशों में भारत की स्वतंत्रता की अलख जगाती रहीं, युवकों को देश के लिए कुछ कर गुजरने और, मर-मिटने की प्रेरणा देती रहीं, क्रांतिकारियों का संबल बनी रहीं, प्रत्येक संघर्ष व पीड़ा में उनकी बराबर की हिस्सेदार रहीं और भारतीयता के प्रचार-प्रसार को ही जीवन का परम लक्ष्य मानकर प्रयासरत रहीं, किंतु इन सबके बावजूद उनका मन अपने देश के लिए तड़पता रहा।

अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि, अपने सगे-संबंधियों, अपनी संस्कृति, अपनी भाषा व देश से दूर धकेल दी जानेवाली इस महिला ने कितने जीवट से अपने लिए निर्धारित निर्वासन को ही देश सेवा के व्रत का अवसर बना दिया। निःसंदेह यदि वे भारत में रहतीं तो सामाजिक व पारिवारिक वर्जनाओं, अंग्रेजों के अत्याचार व दबाव के कारण इतना कार्य न कर पातीं, जितना उन्होंने 25 वर्षों के इस सुदीर्घ प्रवास में किया, किंतु फिर भी अपनी मातृभूमि तो अपनी ही होती है।

मातृभूमि के लिए तड़प

कहते हैं न कि 'जननी व जन्मभूमि स्वर्ग से भी महान् होते हैं'। मैडम कामा आजीवन इसी मातृभूमि के लिए मन-ही-मन व्यथित रहीं। अपने देश की भाषा, समाचार-पत्र, देशवासी या यहाँ से जानेवाला साहित्य; मानो सबकुछ उनके लिए मातृभूमि का प्रसाद बन जाते।

जो युवक वहाँ जाकर अंग्रेजी रंग में रँग जाते, अपनी भाषा की अवहेलना कर, अंग्रेजी दाँ बनने की कोशिश करते, वे उन्हें टोकने से भी बाज नहीं आती थीं। यद्यपि वे भी अंग्रेजी सहित कई भारतीय भाषाओं पर असाधारण अधिकार रखती थीं, किंतु उन्होंने कभी भी

‘हिंदुस्तानी’ का साथ नहीं छोड़ा। विदेश में भी उनकी आत्मा ‘नाम-ए-जमशेद’ व ‘कैसर-ए-हिंद’, को तलाशती थीं।

ये दोनों पत्र बंबई से गुजराती में प्रकाशित होते थे। इन पत्रों के माध्यम से वे अपने देश से बँधे होने का भाव महसूस करती थीं। कोई भारतीय, भारतीय पृष्ठभूमि या भाषा के प्रति अवज्ञा व्यक्त करता तो वे उसे सबक अवश्य सिखाती।

छात्रों को सबक

वे प्रत्येक सप्ताह वहाँ पढ़नेवाले भारतीय छात्रों से भेंट करती थीं। एक दिन सभी छात्र गुजराती भाषा में उनसे बातें कर रहे थे। देश-विदेश, ज्ञान-विज्ञान, इतिहास व संस्कृति, कला व क्रांति अनेक विषयों पर मनोहारी चर्चा चल रही थी कि मैडम कामा ने ध्यान दिया, एक छात्र काफी देर से चुपचाप बैठा था। उन्होंने पूछा—

“क्या बात है? तुम्हें चर्चा में रस नहीं आ रहा है, तुम बोलते क्यों नहीं?”

छात्र की ओर से अप्रत्याशित उत्तर मिला—“मै गुजराती भूल गया हूँ, इसलिए चाहकर भी आप सबसे शुद्ध गुजराती में बात नहीं कर सकता। यदि आप चाहे तो मैं अंग्रेजी में अपने विचार रख सकता हूँ।”

इस पर वे बोलीं—“यह सुनकर तो मुझे बहुत दुःख हुआ। तुम्हें यहाँ आए केवल आठ-दस माह ही बीते हैं और तुम अपनी मातृभाषा भूल गए, जिसे बचपन से बोलते-सुनते आ रहे हो। अगर तुम्हारा दिमाग इतना ही कमजोर है तो यहाँ पढ़ाई के लिए क्यों आए हो? माँ-बाप का पैसा मत बहाओ, देश लौट जाओ। यह पढ़ाई तुम्हारे बस की बात नहीं है। मैं तुम्हारे माता-पिता को लिख दूँगी कि वे तुम्हें वापस बुला लें।”

यह सुनते ही छात्र की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। सारा अंग्रेजी पानी उतर गया। मैडम कामा ने उसे ऐसी धमकी दी कि पल-भर में ही उसे मातृभाषा याद आ गई।

यद्यपि उन्होंने तो हँसी में कहा था कि वे उसके माता-पिता को पत्र लिखेंगी, पर उसे लगा कि कहीं सचमुच ही न लिख दें। कहना न होगा कि उसके बाद छात्र गुजराती भाषा में बोलता दिखने लगा।

अपनी सभ्यता और संस्कृति से प्रेम

मैडम कामा को अपना देश प्राणों से भी प्रिय था। उनके लिए सभी देशवासी मानो उनके अपने थे। अपने देश की संस्कृति व जीवन-मूल्यों को मान देते हुए उन्होंने एक बार कहा था —

‘‘हमें भारत में इंग्लैंड का ‘ओक’ वृक्ष नहीं चाहिए। हमें तो अपना ‘वट वृक्ष’ और ‘सुंदर कमल’ का फूल ही प्रिय है। हमें ब्रिटिश सभ्यता का अंधानुकरण नहीं करना है। हमारी अपनी सभ्यता इससे कहीं अधिक श्रेष्ठ और उदार है...।’’

इस प्रकार मैडम कामा विदेश में रहने पर भी सदा शत्-प्रतिशत भारतीय रहीं।

अपने प्यारे वतन से जुड़े मोह को इस क्रांतिकारिणी का हृदय कभी भुला नहीं पाया। यहाँ भाग्य की विडंबना तो देखिए, जिस देश के लिए आजीवन अपने घर-परिवार व संस्कृति से दूर रहीं, जिस देश के लिए विदेशों में भटकीं, साधारण से घर में एक औसत मध्यमवर्गीय जीवन व्यतीत किया, जिस देश के लिए अपने संपन्न परिवार की सुख-सुविधाएँ भी त्याग दीं; उसी देश की माटी पर लौटने के बाद भी, वहाँ रहने का सुख नहीं पा सकीं। रोगग्रस्त शरीर ने अस्पताल के बिस्तर पर दम तोड़ दिया। देश लौटने से पूर्व उनसे लिखित में लिया गया था कि वे किसी भी प्रकार के राजनीतिक कार्यक्रम, भाषण, समारोह या साहित्य से दूर रहेंगी। उन्होंने किस प्रकार अपनी अंतरात्मा का गला घोंटते हुए यह शर्त स्वीकारी होगी! अपने ही देश में लौटने की अनुमति पाने के लिए शर्तें! हम सहज ही उनके मन की व्यथा का अनुमान लगा सकते हैं।

मातृभूमि की गोद में...

‘‘मैं गुलामों के देश भारत कभी नहीं लौटूँगी। मैं वहाँ तभी जाऊँगी, जब वह स्वतंत्र हो जाएगा। मेरे इतनी अधिक संख्या में बहादुर बेटे हैं, जो अपनी ओर से सब कुछ कर रहे हैं; अपने शरीर का रोम-रोम, रक्त की एक-एक बूँद, जीवन का हर पल, वे अपनी मातृभूमि की चिंता में बलिदान कर रहे हैं। जिसे स्वतंत्र करने में उन्हें सहायता करनी हैं।’’

‘लाइफ ऐंड माइसेल्फ’ नामक पुस्तक में हरींद्र चट्टोपाध्याय 1921 के आसपास, मैडम कामा से भेंट का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

‘‘चलने से पहले हमारी भेंट एक महत्त्वपूर्ण व्यक्ति से हुई। विदेश के क्रांतिकारियों के बीच उनका नाम एक संकेत-शब्द था। वे एक बूढ़ी, झुर्रियोंवाली महिला थीं। उनकी कलाइयाँ और हाथ बड़े-बड़े थे व चेहरा भारतीय क्रांति का प्रत्यक्ष इतिहास लगता था। उनके चेहरे पर खिंची हर रेखा एक ऐसा वाक्य था, जो भारत को स्वतंत्र करने में सहायता करने के संकल्प को व्यक्त कर रहा था।

एक बार उन्होंने हरींद्र चट्टोपाध्याय से कहा था—

‘‘बहुत से लोग मुझसे पूछते हैं कि मैं भारत क्यों नहीं लौटती। भारत से मुझे इतना प्रेम है, उसके बावजूद मैं अपना जीवन उस भूमि की गोद में क्यों नहीं बिताती। इन लोगों को इस बात का विश्व ास नहीं होता कि हम लोग विदेशों में रहकर कार्य करते हुए भी अपने देश से प्रेम कर सकते हैं। उस देश का दर्द हमारे दिलों में भी महसूस होता है, जिसमें हमने जन्म लिया, हम पले, जो हमारी साँसों में जीवित है—सुनो, मैंने कसम खाई है कि विदेशी पासपोर्ट लेकर भारत कभी नहीं लौटूँगी, आखिर मैं ऐसा क्यों करूँ?’’

मित्र जानते थे कि मैडम कामा भारत लौटने के लिए कितनी व्याकुल रहती थीं, किंतु इसके बावजूद वे जाना नहीं चाहती थीं। इसका कारण जानने के लिए एक दिन एक मित्र ने पूछ

ही लिया

‘‘आप भारत लौट क्यों नहीं जाती?’’

उन्होंने उत्तर दिया—‘‘क्योंकि अंग्रेज सरकार चाहती है कि मैं अपने क्रांतिकारी कार्यों के लिए लिखित में माफी माँगू व उन्हें गारंटी दूँ कि भविष्य में राजनीति में भाग नहीं लूँगी?’’

‘‘आप ऐसा क्यों नहीं कर लेतीं? वैसे भी आप राजनीति की दृष्टि से काफी वृद्ध हो चुकी हैं?’’ मित्र ने तो कह दिया, पर उनके उत्तर को सुनकर वह आश्चर्य में पड़ गया।

मैडम कामा ने गरजते स्वर में कहा—‘‘नहीं! मैं राजनीति के लिए कभी बूढ़ी नहीं हो सकती। मैं अब भी यही चाहती हूँ कि पूरे भारत में राजनीतिक सभाओं में भाषण दूँ...।’’

मैडम कामा कई दशकों तक पेरिस में रहीं। अब वे वृद्धा और अशक्त हो चली थीं। एक कार दुर्घटना में सिर की खोपड़ी का ऑपरेशन कराना पड़ा, मोतियाबिंद का ऑपरेशन हुआ, जिसके बाद मुँह को लकवा मार गया। वे दिन-पर-दिन अशक्त हो रही थीं।

पुराना आवास टूट चुका था। आँखों से कम दिखने लगा था। उन्होंने महादेव राव को अपना बहुमूल्य झंडा भी सौंप दिया। उन दिनों में श्रीमान् आचार्य उनके साथ थे। वे अकसर उन्हें उन जलपान गृहों की ओर ले जाते, जहाँ उन्होंने क्रांतिकारी साथियों के साथ अनेक शामें बिताई थीं।

रोग तथा वृद्धावस्था

लोग प्रायः देखते कि एक अशक्त वृद्धा पक्षाघात से ग्रस्त है, उसे एक युवा सहारा दिए सड़क पर ले जा रहा है। कौन जानता था कि वह वृद्धा ही उनकी चिर-परिचित मैडम कामा थी, जो अब ढलती उम्र और रोगों के चंगुल में थीं।

मैडम कामा को लगने लगा था कि अंतकाल समीप है। इसलिए उन्होंने पे-ला-शे नामक कब्रिस्तान में जगह खरीद ली थी। एम.पी.टी. आचार्य इस प्रसंग का वर्णन करते हैं—

‘‘एक दिन वे मुझे अपनी कब्र दिखाने ले गईं। कब्र के पत्थर पर फ्रांसीसी व उनकी मातृभाषा में शिलालेख खुदवा लिया था। वहाँ लिखा था—‘‘अत्याचार का प्रतिरोध करना, ईश्व र की इच्छा का पालन करना है।’’

टावर ऑफ साइलेंस

मैडम कामा ने उन्हें बताया कि वे जरोस्ट्रियन धर्म व्यवस्था में श्रद्धा रखती हैं। इस व्यवस्था के अनुसार मृत शव को गिद्धों को अर्पित किया जाता है। इस धर्म के अनुसार जल, अग्नि व

मिट्टी जैसे प्राकृतिक तत्त्वों की शुद्धता व पवित्रता बनाए रखने पर विशेष महत्त्व दिया जाता है। पारसी मानते हैं कि इन तत्त्वों में मृत शरीर डालकर उन्हें अपवित्र नहीं बनाना चाहिए। अतः शवों को टॉवर ऑफ साइलेंस में रख दिया जाता है। यह ऊँची चारदीवारी से घिरा, किंतु ऊपर से खुला गोल अहाता होता है। शव को मांसभक्षी पक्षी खा जाते हैं।

जिन स्थानों पर पारसियों के शव नष्ट करने के लिए साइलेंस टावर नहीं है, वहाँ उन्हें दफनाया जाता है। वहाँ ऐसी कोई व्यवस्था नहीं थी, इसलिए मैडम कामा ने कब्र का प्रबंध किया था।

उन्होंने आचार्यजी से कहा था—

“वास्तव में प्रकृति ही तो शरीर को रचती है। उस पर हमारा कोई हक नहीं बनता, अतः उस पर गिद्धों का हक बनता है...।”

मैडम कामा : मातृभूमि की गोद में

नजरबंदी व निर्धनता की यातनाएँ सहने के बाद रोग से जर्जर शरीरवाली वृद्धा मैडम कामा को अंततः भारत लौटने की अनुमति मिल ही गई। सरदार सिंह राणा अपनी मित्र कामा की हालत देख द्रवित हो उठे थे। कठोर ब्रिटिश सरकार ने अपने शर्तनामे पर दस्तखत के बाद ही उन्हें भारत आने की अनुमति प्रदान की। मित्र व शुभचिंतकों से विदा लेने के बाद वे जहाज में सवार हुईं।

वे करीब 35 वर्षों का निर्वासित जीवन व्यतीत करने के बाद भारत लौट रही थीं। अस्वस्थ शरीर समुद्री यात्रा से और भी निढाल पड़ गया।

भारत पहुँचीं तो ललक से अपने देश की धरती को निहारा। बुढ़ापे की मार से धुँधलाई आँखों में पानी भर आया। जब वे भारत से गई थीं तो एक युवती थीं और अब एक सत्तर वर्षीय वृद्धा के रूप में लौटी थीं।

निःसंदेह उन्होंने जीवन-यात्रा में बहुत कुछ पाया। अपना पूरा जीवन ध्येय पूर्ति में लगा दिया, किंतु हृदय के किसी कोने में एक साधारण भारतीय महिला की तरह जीवन जीने, अपने आत्मीयों से सुख-दुःख बाँटने, अपने रीति-रिवाज व पर्व-त्योहार मनाने की हूक तो अवश्य ही उठती होगी। मनुष्य चाहे कहीं भी क्यों न चला जाए, अपनी जड़ों की ओर लौटने का मोह तो बना ही रहता है, ये जड़ें ही तो उसे सात समंदर पार से भी खींच लाती हैं।

मैडम कामा भी अपने देश, अपने लोगों के बीच लौट आई थीं। मित्र व शुभचिंतकों का साथ था, किंतु संबंधियों व उनके बीच अब भी एक अभेद दीवार थी। अधिकांश परिचित खतरनाक क्रांतिकारी कहलानेवाली महिला से भेंट करने से भी कतरा रहे थे।

वे तो जैसे अंतिम साँसें गिनने के लिए ही लौटी थीं। आते ही बंबई के पारसी अस्पताल में भरती होना पड़ा। पति तब भी मिलने नहीं आए। संभवतः वे मोह या परिचय के सारे बंधन काट चुके थे।

उग्र क्रांतिकारिणी मैडम कामा ने अस्पताल में तकरीबन आठ महीने रहने के पश्चात् 16 अगस्त, 1936 को प्राण त्याग दिए। न उनके सम्मान में कोई शोक सभा हुई और न ही इस दुनिया के व्यापार पर कोई अंतर पड़ा। इस हृदयहीन वातावरण के बीच ही वे चली गईं। बस उन्हें एक यही संतोष अवश्य रहा होगा कि वे मातृभूमि की गोद में प्राण त्याग रही हैं और उनके शव का अंतिम संस्कार पारसी पद्धति से हो पाएगा...।

जिस शरीर ने आजीवन निःस्वार्थ भाव से दूसरों के दुःख-दर्द दूर करने का कर्तव्य निभाया, वह मरकर भी दूसरों के काम आने की प्रवृत्ति का लोभ संवरण नहीं कर सका...।

मैडम कामा की याद में...

मैडम कामा ने जिस स्वतंत्रता को पाने के लिए पूरा जीवन लगा दिया, वह उनकी मृत्यु के ग्यारह वर्ष पश्चात् भारत को प्राप्त हुई। भारत के स्वाधीनता संग्राम में मैडम कामा का योगदान भुलाया नहीं जा सकता। वे राष्ट्रीय आंदोलन की अग्रदूत थीं। उनके भाषण, लेख, अपीलें व योजनाएँ क्रांतिकारियों के हृदय को आंदोलित कर देते थे।

उन्होंने 1910 में मिस्र के राष्ट्रीय सम्मेलन को संबोधित किया था, उसमें केवल पुरुष ही सम्मिलित थे। स्त्री-पुरुष की समानता में विश्व ास रखनेवाली मैडम कामा उनसे पूछे बिना नहीं रह पाईं—

‘‘साथियो! मिस्र का दूसरा आधा अंग कहाँ है! मिस्र के बेटो! आपकी माताएँ कहाँ हैं? आपकी बहनें कहाँ हैं? आपको भूलना नहीं चाहिए कि पालना झुलानेवाले हाथ व्यक्ति का भी निर्माण करते हैं, राष्ट्र के जीवन में इन कोमल हाथों की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए।’’

उन्होंने गलत तो नहीं कहा था। वे मैडम कामा के ही हाथ थे, जिन्होंने पहली बार अंतरराष्ट्रीय मंच पर हमारे देश का झंडा फहराया था। उन्होंने कभी भी किसी पुरस्कार, सम्मान या प्रशंसा की कामना नहीं की। आत्मप्रसिद्धि से कोसों दूर मैडम कामा ने कभी आशा नहीं की होगी कि देश उनके प्रति कृतघ्नता व्यक्त करे, किंतु क्या हमारी ओर से यह व्यवहार उचित था? क्या हम उस महिला को मृत्यु के पश्चात् विनीत श्रद्धांजलि दे सके, जिसने पारिवारिक संपन्नता व सुखों को त्याग, कँटीली राहें चुन ली थीं, ताकि हम स्वतंत्र भारत में सुख की साँसें ले सकें और पूरी दुनिया के सामने सिर उठाकर जी सकें।

जन्म-शताब्दी के अवसर पर

मैडम कामा की मृत्यु को तकरीबन पच्चीस वर्ष बीत गए। किसी को एक बार भी उनकी

याद नहीं आई। उनके सम्मान में कोई समारोह या स्मारक नहीं बना। हमने बड़ी कृतघ्नता से उनकी सेवाओं व योगदान को भुला रखा था।

1960 में उनकी जन्म-शताब्दी के अवसर पर, उनके योगदान के प्रति जनचेतना जागृत हुई।

अखिल भारतीय महिला सम्मेलन में उन्हें श्रद्धांजलि देते हुए कहा गया—

"मैडम कामा स्वाधीनता के लिए संघर्ष करनेवाले आरंभिक क्रांतिकारियों में से थीं। उन्हें राष्ट्रवादी गतिविधियों के कारण अपनी जन्मभूमि व घर-परिवार को त्यागकर विदेशों में शरण लेनी पड़ी। उन्होंने ही हमें पहला राष्ट्रीय ध्वज दिया...।"

तभी बंबई महानगर निगम की ओर से निम्नलिखित प्रस्ताव भी पारित किया गया—

"मैडम कामा ने इस शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में, देश के स्वतंत्रता संघर्ष में जो ऐतिहासिक भूमिका निभाई, उस पर कॉर्पोरेशन को गर्व है। उन्होंने स्वाधीनता के लिए न केवल निर्वासन व कष्ट भोगे, बल्कि भारतीय राष्ट्रीयता की अग्रणी पथप्रदर्शक भी बनीं। उन्होंने एक ऐसे संयुक्त भारतीय गणतंत्र की कल्पना की—जिसकी एक समान भाषा व लिपि होगी। वे प्रथम क्रांतिकारी थीं, जिन्होंने भारत को राष्ट्रीय ध्वज दिया, जिसे उन्होंने 1907 में जर्मनी के प्रथम समाजवादी कांग्रेस में फहराया था।

निगम कार्य समिति से अनुरोध करता है कि इस महान् देशभक्त महिला की जन्म-शताब्दी 24 सितंबर, 1961 के अवसर पर, उनकी उपलब्धियों की स्मृति बनाए रखने के लिए; किसी उपयुक्त मुख्य मार्ग का नाम बदलकर मैडम कामा के नाम पर रखा जाए...।"

उनकी याद में...

1962 में गणतंत्र दिवस समारोह में महाराष्ट्र सचिवालय रोड का नाम 'मैडम भीकाजी कामा रोड' रखा गया।

उनकी स्मृति में एक डाक टिकट भी जारी किया गया, जिस पर उनका चित्र बना था। बंबई व पुणे के वीर सावरकर हॉल में उनका एक चित्र लगाया गया।

दक्षिण दिल्ली में उनके नाम पर एक महत्त्वपूर्ण इलाके का नाम 'भीकाजी कामा प्लेस' रखा गया।

निःसंदेह उन्हें बहुत कम अवसरों पर व बहुत कम संख्या में श्रद्धांजलियाँ अर्पित की गईं। उस महान् राष्ट्रवादी महिला ने निर्वासन में जितने वर्ष व्यतीत किए, हम उतनी बार भी उन्हें याद नहीं कर पाए, किंतु यह भी सच है कि एक देशभक्त, स्वाधीनता संग्राम की अग्रणी पथप्रदर्शिका, वीर व साहसी महिला, क्रांतिकारिणी व बहुआयामी व्यक्तित्व की स्वामिनी मैडम भीकाजी रुस्तम कामा हमारे हृदय में विशेष स्थान रखती हैं। भारत की

भावी पीढ़ियाँ उनसे देश के लिए कुछ कर दिखाने की अनवरत प्रेरणा पाती रहेंगी।

प्रमुख सहयोगी

मैडम कामा विदेश प्रवास के दौरान अनेक क्रांतिकारियों, राजनीतिज्ञों, नेताओं व पत्रकारों के संपर्क में रहीं। उन्होंने प्रत्येक को हर संभव सहयोग भी दिया, किंतु श्यामजी कृष्ण वर्मा व राणाजी का उनके जीवन में विशेष प्रभाव रहा।

प्रारंभिक वर्षों में वे दादाभाई नौरोजी की सचिव के रूप में कार्य करती थीं। वे पूरे मन से उनके कार्यों की देखरेख कर रही थीं, किंतु राजनीतिक पटल के विस्तृत होते ही कांग्रेस की नीतियों का भीतरी संघर्ष उनकी समझ में आने लगा। उन्हें महसूस होने लगा कि अब केवल अर्जियाँ देने से बात नहीं बनेगी। अपनी स्वतंत्रता पाने की याचना क्यों की जाए? जो चीज शत-प्रतिशत अपनी हो, उसे तो पूरे अधिकार से लेना चाहिए।

इस प्रकार वे 'याचिका' केंद्रित राजनीति से विमुख होने लगीं। इस वैचारिक परिवर्तन के दौरान वे श्यामजी तथा राणाजी से मिलीं। ये लोग अपनी भिन्न सोच के कारण एक अलग ही रूप में उभर रहे थे। मैडम कामा की उनके साथ वैचारिक सहमति थी, अतः वे उनके साथ मिलकर काम करने लगीं।

शीघ्र ही क्रांतिकारियों के बीच वे तीनों 'त्रिक' के नाम से लोकप्रिय हो गए। इस 'त्रिक' ने अनेक योजनाओं का सफल क्रियान्वयन किया।

परिवर्ती परिस्थितियों में श्यामजी का बाकी दोनों से वैचारिक मतभेद भी हुआ, किंतु फिर भी आत्मीयता की डोर नहीं टूटी। रास्ते चाहे अलग हो गए, किंतु सबकी मंजिल तो एक ही थी।

मैडम कामा के संपूर्ण व्यक्तित्व, कार्यों व जीवन का विश्लेषण करते समय इन दो प्रतिभाशाली व्यक्तियों के बारे में जानना भी अनिवार्य जान पड़ता है, तभी मैडम कामा के जीवन में इनके महत्त्व व प्रभाव को रेखांकित किया जा सकता है।

श्यामजी कृष्ण वर्मा

जन्म व शिक्षा

श्यामजी कृष्ण वर्मा का जन्म 4 अक्तूबर, 1857 को कच्छ राज्य के मांडवा में हुआ। निर्धन परिवार में जन्मे श्यामजी ने शीघ्र ही अपनी मेधावी प्रतिभा का लोहा मनवा दिया। माता-पिता ने निश्चय किया कि वे प्रतिभाशाली पुत्र को अंग्रेजी अवश्य पढ़ाएँगे।

कुछ समय बाद माँ का देहांत होने के पश्चात् वे नानी के पास रहकर पढ़ने लगे। पिता व्यापार के सिलसिले में दूसरे स्थान पर रहते थे।

श्यामजी की विलक्षण प्रतिभा की चर्चा श्री मथुरादास लावाजी तक पहुँची और वे उनके आश्रयदाता बन गए। उन्हीं की कृपा से श्यामजी अच्छी शिक्षा पाने लगे। यहीं उन्हें संस्कृत की शिक्षा पाने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। अठारह वर्ष की आयु तक वे संस्कृत के प्रकांड विद्वान् हो गए थे।

प्राच्य व पाश्चात्य विद्या के धनी श्यामजी का विवाह एक धनी व संपन्न परिवार की पुत्री से हुआ। श्यामजी स्वाभिमानी युवक थे। वे धनी ससुर से सहायता लेने के बजाय ट्यूशन करके अपना गुजारा चलाते थे।

उनके जीवन पर स्वामी दयानंदजी का भी विशेष प्रभाव रहा। नासिक में उनके धाराप्रवाह संस्कृत भाषणों की धूम मच गई और यही ख्याति विदेशी विद्वानों तक भी जा पहुँची। श्यामजी इंग्लैंड जाकर पढ़ना तो चाहते थे, किंतु इतना धन कहाँ से आता।

नौकरी व राजनीति

श्यामजी के विदेश प्रवास में पढ़ाई करने में मिलनेवाली छात्रवृत्तियों ने काफी सहायता दी। 1885 में वे भारत लौटे तथा बंबई में वकालत करने लगे। परिस्थितियाँ कुछ ऐसी बनीं कि वे रतलाम के दीवान नियुक्त हो गए। रतलाम के महाराज व विदेश विभाग को उनकी योग्यता का लाभ मिला। जब अचानक उनकी सेहत बिगड़ गई तो उन्हें दीवान के पद से त्यागपत्र देना पड़ा।

फिर वे अजमेर में वकालत करने लगे। वहीं पास में ही उन्होंने कपास के तीन कारखाने खोले। वे आजीवन उन्हें पर्याप्त आय देते रहे।

इसके बाद वे उदयपुर के दीवान बने। विस्तृत कार्यक्षेत्र की तलाश में वे जूनागढ़ जा पहुँचे। वहाँ राजनीतिक स्थितियाँ काफी भयंकर थीं, षड्यंत्रों का बोलबाला था। कुछ ही समय में वे भी साजिश का शिकार हो गए व उन्हें दीवान के पद से हटा दिया गया।

वे उदयपुर लौट आए, वहाँ दीवान पद भी पुनः मिल गया, किंतु अंग्रेज अधिकारी उनसे कार्य-व्यवहार नहीं रखना चाहते थे, क्योंकि जूनागढ़ के विरोधियों ने उनकी छवि काफी

धूमिल कर दी थी।

धीरे-धीरे श्यामजी के सामने अंग्रेजों की सच्ची मानसिकता प्रकट होने लगी। वे जान गए कि भारत को दबाना व उस पर निरंकुश शासन ही अंग्रेजों का एकमात्र उद्देश्य है।

तिलक से प्रेरणा

श्यामजी कृष्ण वर्मा पर हुए अन्याय के लिए लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने आवाज उठाई और इस प्रकार वे दोनों परम आत्मीयता की डोर में बँध गए।

1907 में पूना में अंग्रेजी अत्याचारों के विरुद्ध तिलक ने विद्रोह किया। श्यामजी को पूरा विश्व ास हो गया कि अंग्रेजों को बलपूर्वक ही भारत से बाहर निकाला जा सकता है।

मानसिक द्वंद्व

श्यामजी कृष्ण वर्मा जीवन के विविध रूपों का अनुभव ले चुके थे। देशी रियासतों व अंग्रेजों के क्रियाकलापों को पास से देख चुके थे। राजनीति में तिलक सरीखे नेताओं से भी बहुत कुछ सीखा, किंतु अब वे एक ऐसे स्थान पर खड़े थे, जहाँ से कई राहें एक साथ निकलती थीं। सफल वकील बनें, व्यवसायी बनकर धन कमाएँ या किसी उग्र राजनीतिक दल का नेतृत्व करें।

उन्होंने देश की स्वतंत्रता के लिए ही कार्य करने का निश्चय किया, किंतु वे यह भी जान गए थे कि अंग्रेजों के साए में रहकर कुछ भी करने का अर्थ होगा, आजन्म कारावास। इससे तो बेहतर यही होगा कि विदेश में रहकर देश की आजादी के लिए काम करें।

इस विषय में उन्होंने आगे चलकर अपने पत्र में लिखा था—"संस्कृत में एक कहावत है कि कीचड़ में पैर डालकर उसे धोने से तो यही अच्छा है कि उसमें पैर डाला ही न जाए। सरकार के हाथों बंदी बनकर, स्वयं को कर्म से विमुख करना बहुत बड़ी भूल होगी। इससे तो अच्छा है कि स्थिति का अनुमान लगाते हुए पहले ही ऐसा उपाय कर लें कि यह नौबत ही न आए...।"

दार्शनिक स्पेंसर के अनुयायी

श्यामजी लंदन आ गए, किंतु वहाँ भी कांग्रेस की सदस्यता स्वीकार नहीं की, क्योंकि वे कांग्रेस की नीतियों के कट्टर आलोचक थे। वहाँ उन्होंने अपने-अपने देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे अनेक विदेशी नेताओं से संपर्क स्थापित किया।

वे हर्बर्ट स्पेंसर के अनुयायी थे। उन्होंने योजना बनाई कि स्पेंसर के विचारों को भारत में

फैलाने के लिए प्रोफेसर नियुक्त किए जाएँ, किंतु स्पेंसर मरणासन्न थे, अतः इस विषय में कोई ठोस कारवाई न हो सकी।

स्पेंसर की मृत्यु हो गई। उनके अंतिम संस्कार में श्यामजी भी सम्मिलित थे। उन्होंने प्रिय दार्शनिक की स्मृति में ऑक्सफोर्ड विश्व विद्यालय में स्पेंसर लेक्चररशिप तथा स्वामी दयानंद सरस्वती की स्मृति में 6 छात्रवृत्तियाँ स्थापित कीं—ये सब भारतीय छात्रों के लिए थीं।

सोशियोलॉजिस्ट का प्रकाशन

जनवरी, 1905 में वे लंदन से 'इंडियन सोशियोलॉजिस्ट' नामक पत्र निकालने लगे। पत्र ने पाठकों को भारत की वास्तविक स्थिति से अवगत करवाया और कहा कि पूर्ण स्वतंत्रता पाने पर ही भारत का दुःख दूर हो सकता है। पत्र ने खुलेआम क्रांतिकारी नीतियों का प्रचार शुरू कर दिया। 18 फरवरी, 1905 को श्यामजी ने कुछ भारतीयों के साथ मिलकर 'इंडियन होमरूल सोसाइटी' की स्थापना की।

मैडम कामा भी 'पत्र' में नियमित रूप से लिखने लगीं तथा होमरूल सोसायटी की सदस्या बन गईं। श्यामजी की सफलता से उत्साहित होकर तिलक ने भी उन्हें बधाई का तार भेजा।

इंडिया हाउस की स्थापना

इंडिया हाउस की स्थापना अपने-आपमें एक महान् व ऐतिहासिक कदम था। इस हाउस ने विदेश में रह रहे भारतीय युवकों को एक साथ रहने, अपने विचार एक-दूसरे से बाँटने व एक ही लक्ष्य के प्रति शक्तियों को केंद्रित करने में भरपूर सहायता दी। यदि वे लोग इस छत तले एकत्र होने का अवसर न पाते तो संभवतः तत्कालीन क्रांतिकारी परिदृश्य कुछ और ही होता। मैडम कामा को भी विचारों को मूर्त रूप देने के लिए कार्यक्षेत्र मिल गया। स्वयं नेहरूजी ने अपनी आत्मकथा में स्वीकारा कि वे राष्ट्रवादी गतिविधियाँ इंग्लैंड में रह रहे भारतीयों में जोश भर देती थीं।

ब्रिटिश शासन पर कठोर प्रहार

एक एंग्लो इंडियन संवाददाता ने टिप्पणी की कि होमरूल का शासन भारत की व्यावहारिक राजनीति में कोई स्थान नहीं रखता, तब उन्होंने अपने पत्र में उसका मुँहतोड़ उत्तर देते हुए कहा।

"जो साम्राज्य ब्रिटेन ने एक दिन में प्राप्त किया था, वह एक रात में खो जाएगा...।

भारत में कहीं भी गोरे नौकर, साईस, पोस्टमैन या पुलिसवाले नहीं है। कोई भी कर्मचारी या दुकानदार भी अंग्रेज नहीं है। यदि भारतीय एक सप्ताह के लिए इनका काम करना बंद कर दें तो यह साम्राज्य ताश के पत्तों की तरह ढह जाएगा और अंग्रेज खाने-पीने की वस्तुओं को भी तरसेंगे...।''

इसी दौरान श्यामजी अपने पत्र व लेखों के माध्यम से भारत की तत्कालीन राजनीति से भी जुड़े रहे। राणाजी, मैडम कामा, सावरकर, सेनापति बापट आदि अनेक क्रांतिकारी उनके साथ थे। श्यामजी की लेखनी ने विदेशियों को इस बात का अहसास तो दिला ही दिया कि ब्रिटिश शासन भारत के लिए बिलकुल उपयुक्त नहीं था।

वे अपने सिद्धांतों के भी पक्के थे। जीवन में अनेक ऐसे अवसर आए, जब उन्होंने बाकी सब भुलाकर, केवल अपने सिद्धांतों का पालन किया। वे पत्र में निरंतर, दूसरे देशों के देशभक्तों व क्रांतिकारियों का साहित्य प्रकाशित करते ताकि अपने देशवासी उनसे प्रेरणा ले सकें।

भारत में कोई भी क्रांतिकारी घटना घटती तो झट से उनके पत्र में प्रतिक्रिया दिखती। चाहे वह लाला लाजपत राय के निर्वासन की खबर हो या किसी क्रांतिकारी के कैद होने का समाचार।

इंडिया हाउस की गतिविधियाँ इतनी बढ़ गईं कि गुप्तचर विभाग सतर्क हो उठा। उसने श्यामजी पर भी शिकंजा कसना शुरू कर दिया।

मैडम कामा के उत्तेजक भाषण व लेख उनके पत्र में प्रकाशित होते। उन्होंने पत्र में 'ला मर्सिलीज' का अनुवाद प्रकाशित किया तो तूफान आ गया।

मदनलाल धींगरा द्वारा कर्जन वायली की हत्या से चारों ओर विचित्र-सा वातावरण बन गया। ब्रिटेन के पत्रों ने उन पर इलजाम लगाया कि इस हत्या में उनका भी हाथ था। श्यामजी थोड़े से विचलित हो उठे। उन्होंने इस विषय में अस्पष्ट-सा बयान दिया। इंडिया हाउस बंद कर दिया गया। क्रांतिकारी साथी कड़ी काररवाई के पक्ष में थे, इसलिए वे फ्रांस चले गए तथा वहाँ अपने तरीके से क्रांति का संचालन किया।

श्यामजी ने स्वयं कभी हिंसा का कोई कार्य नहीं किया, किंतु वे देश की स्वतंत्रता के लिए हिंसक उपायों का समर्थन अवश्य करते थे। वे क्रांतिकारियों को आर्थिक सहायता देने से भी कभी पीछे नहीं हटे।

अंत समय

1914 में वे फ्रांस से जेनेवा चले गए तथा मृत्युपर्यंत वहीं रहे। यद्यपि वर्षों पूर्व राणाजी से उनका मतभेद हो गया था, किंतु 1930 में उनकी मृत्यु के पश्चात् राणाजी ने उनकी संपत्ति की वैसी ही व्यवस्था करने में सहायता की, जैसी वे चाहते थे। श्यामजी कृष्ण वर्मा मैडम

कामा के जीवन को एक क्रांतिकारी दिशा देने में विशेष रूप से सहायक रहे, इसलिए मैडम कामा के जीवन में उनके प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता।

सरदार सिंह राव राणा

जन्म व शिक्षा-दीक्षा

सरदार सिंह रावजी राणा का जन्म 1870 में, काठियावाड़ सौराष्ट्र के 'कंथारिया' ग्राम में हुआ था। उनके पूर्वजों को देशभक्ति, वीरता व निष्ठा के लिए 'राणा' की उपाधि दी गई थी। सरदारजी का बचपन वैभव और विलास के बीच बीता। राजकोट व बंबई से शिक्षा पाने के बाद उन्होंने तय किया कि वे उच्च शिक्षा पाने के लिए विलायत जाएँगे।

जिन दिनों वे बंबई के कॉलेज में पढ़ रहे थे तो पूना में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। वे भी स्वयंसेवक दल में शामिल हो गए। उनकी देशभक्ति, विनय व कर्तव्यपरायणता ने श्री बनर्जी का मन मोह लिया। उन्होंने अधिवेशन में पढ़ने से पूर्व अपने अध्यक्षीय भाषण की प्रति व हस्ताक्षर सहित चित्र भी भेंट किया।

विदेश प्रवास

1898 में राणा विदेश आ गए। उन दिनों संभ्रांत घराने के नवयुवकों की एकमात्र अभिलाषा यही होती थी कि वे किसी तरह लंदन से बार एट लॉ हो जाए, क्योंकि इसके बाद ही भारत में कोई उच्च प्रशासनिक पद मिल सकता था। भारत की तरह यहाँ भी राणाजी काठियावाड़ी वेशभूषा में ही रहते थे। मित्रों के आग्रह पर भी उन्होंने कोट-पैंट नहीं पहना। संभवतः वे इसी माध्यम से अंग्रेजों के प्रति अपनी घृणा व स्वदेश के प्रति स्वाभिमान को व्यक्त करना चाहते थे।

श्यामजी व नौरोजी से भेंट

राणा के हृदय में स्वदेश प्रेम हिलोरे ले रहा था। शीघ्र ही वे अपनी देशभक्ति के लिए सभी के बीच चर्चा का विषय बन गए। इसी दौरान उनकी भेंट श्यामजी कृष्ण वर्मा से हुई। श्यामजी कृष्ण वर्मा क्रांतिकारी विचारधारा रखते थे। अंग्रेज सरकार की सख्ती से बचने के लिए ही वे भारत छोड़कर वहाँ आ बसे थे। शीघ्र ही राणा व श्यामजी वर्मा में मित्रता हो गई। दोनों का एक ही ध्येय था। वे भारतीय युवकों को क्रांतिकारी गतिविधियों के लिए एक झंडे तले लाना चाहते थे।

उन दिनों दादाभाई नौरोजी 'इंडियन एसोसिएशन' के अध्यक्ष थे। यह एसोसिएशन

वैधानिक आंदोलनों के माध्यम से भारतीयों को राजनीतिक अधिकार दिलवाने के प्रयास करती थी। राणाजी व श्यामजी कृष्ण वर्मा भी उनकी एसोसिएशन से जुड़ गए, किंतु शीघ्र ही वे जान गए कि दादाभाई नौरोजी व उनकी नीतियों में काफी भिन्नता थी। उन्हें अहसास हो चला था कि अधिकार कभी भी भीख में नहीं मिलते, उन्हें छीनना पड़ता है, फिर चाहे 'साम-दाम-दंड-भेद' कोई भी तरीका क्यों न अपनाना पड़े।

परिणामतः वे शीघ्र ही एसोसिएशन से विमुख हो गए। वे एक पृथक् क्रांतिकारी संगठन बनाना चाहते थे। राणाजी 'इंडियन सोशियोलॉजिस्ट' नामक पत्र निकालने में सहयोग दिया। श्यामजी ने 'होमरूल सोसाइटी' की स्थापना की। राणा उसके उपाध्यक्ष बनाए गए।

इंडिया हाउस व धन की आपूर्ति

ब्रिटेन में अध्ययन के लिए आनेवाले युवक पढ़-लिखकर अंग्रेजों के हाथों की कठपुतली बनकर न रह जाएँ, इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए 'इंडिया हाउस' की स्थापना की गई। वह भारतीय युवकों के रहने-खाने का स्थान था, किंतु वास्तव में क्रांतिकारियों का अड्डा था। वहाँ तरुण युवक क्रांतिकारी कार्यों की दीक्षा लेते थे।

क्रांतिकारी कार्यों के लिए उत्साह व जोश का अभाव तो नहीं था, किंतु धन कहाँ था? जो युवक वहाँ रहते थे, वे भी भारत से आई सीमित धनराशि से ही गुजारा चलाते थे।

इन परिस्थितियों में राणाजी को धनार्जन का उचित अवसर हाथ लगा। जुलाई, 1900 में वे पेरिस में हीरे की प्रदर्शनी देखने गए। वहीं उनकी भेंट एक भारतीय व्यापारी से हुई, जो पेरिस को केंद्र बनाकर हीरे-जवाहरात व मोतियों का व्यापार करना चाहता था। उसने राणाजी को साझेदार बनने की पेशकश दी। यद्यपि वे इस व्यापार में रुचि नहीं रखते थे, किंतु अपने ध्येय की पूर्ति के लिए आवश्यक धनार्जन के लिए वे साझेदार बन गए। उनका यह निर्णय अनुचित नहीं था। कुछ ही समय में उन्हें इतना लाभ हुआ कि वे 'पर्ल प्रिंस' कहलाने लगे। उन्होंने व्यापार से प्राप्त लाभ से क्रांतिकारी संगठनों को आर्थिक सहायता प्रदान की। अनेक क्रांतिकारी योजनाएँ व छात्रवृत्तियाँ भी उसी लाभ के बल पर आगे बढ़ सकीं।

सशस्त्र क्रांति के समर्थक

राणाजी ने सशस्त्र क्रांति को समर्थन देते हुए रूसी क्रांतिकारियों से संपर्क स्थापित किया। एक बंगाली क्रांतिकारी युवक हेमचंद्र दास बम बनाने का प्रशिक्षण पाने के लिए पेरिस पहुँचे तो राणाजी ने उन्हें अपने घर में रहने का स्थान दिया व यथायोग्य सहायता भी की।

उनके अपने ही घर में बम बनाने की प्रयोगशाला बनाई गई। यही नहीं, अन्य क्रांतिकारियों के अतिरिक्त स्वयं राणाजी ने भी बम बनाने का प्रशिक्षण प्राप्त किया।

रूसी विशेषज्ञ द्वारा बम बनाने की विधि पर एक पुस्तक तैयार की गई। उसके अंग्रेजी अनुवाद की प्रतियाँ भारत में भी वितरित हुईं। अंग्रेज सरकार को छापों के दौरान कई क्रांतिकारियों के घरों से वे पुस्तकें प्राप्त हुईं।

छात्रवृत्तियों की घोषणा

श्यामजी कृष्ण वर्मा अपने क्रांतिकारी संगठन के लिए कुछ ऐसे दृढ़ निश्चयी नवयुवक चाहते थे जो अध्ययन समाप्त कर राजकीय नौकरी करने के बजाय आजन्म देश-सेवा का व्रत ले सकें। उन्होंने इसी आशय से छात्रवृत्तियाँ प्रदान करने की घोषणा की।

राणाजी को भी विचार बेहद पसंद आया। उन्होंने महाराणा प्रताप, शिवाजी व एक मुसलिम शासक के नाम पर तीन छात्रवृत्तियाँ देने की घोषणा की। लाला हरदयाल, वीर सावरकर व सेनापति बापट ने इन्हीं छात्रवृत्तियों के बल पर इंग्लैंड में अध्ययन किया और वे तीनों भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष के अग्रणी कार्यकर्ता बने।

मैडम कामा से भेंट

पेरिस में ही राणाजी की भेंट मैडम कामा से हुई। जब मैडम कामा जर्मनी के अंतरराष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन में भाग लेने गईं तो राणाजी भी उनके साथ थे। उसके बाद वे वर्षों एक-दूसरे के साथ मिलकर क्रांतिकारी कार्यों में हाथ बँटाते रहे। उस सम्मेलन की सफलता से उत्साहित होकर राणाजी व मैडम कामा ने अनेक नई योजनाओं का सूत्रपात किया।

कन्हाईलाल की शहादत

1908 में कन्हाईलाल दत्त के शरीर की भस्म इंडिया हाउस पहुँची तो भारतीय क्रांतिकारियों ने निश्चय किया कि वे अमर शहीद की याद में एक कार्यक्रम करेंगे।

उस कार्यक्रम के सभापतित्व की चर्चा चल रही थी। ये सभी जानते थे कि जो भी कार्यक्रम की अध्यक्षता करेगा, वही सरकार की आँखों में खटक जाएगा, संभवतः उसे जेल की हवा भी खानी पड़े, किंतु राणाजी ने स्वयं अपना नाम आगे रख दिया। वे उस कार्यक्रम के सभापति बने, सबने उस अमर शहीद के शव की भस्म को माथे पर लगाकर प्रतिज्ञा की कि वे भारत से अंग्रेजों का समूल नाश करके ही दम लेंगे।

ब्रिटेन के गुप्तचर विभाग की चौकसी के कारण वहाँ रहकर राजनीतिक कार्य करना असंभव हो गया तो राणाजी पेरिस आ गए, तब तक उनकी कानून की पढ़ाई भी पूरी हो चुकी थी।

राणाजी की दिलेरी

राणाजी ने न केवल मैडम कामा द्वारा निकाले गए पत्रों को भरपूर समर्थन व सहयोग दिया, बल्कि भारतीय क्रांतिकारियों को अस्त्र-शस्त्र भिजवाने की व्यवस्था भी की। उनके द्वारा भेजी गईं पिस्तौल व उनसे जुड़ी मैडम कामा के बचाव की घटना तो आप पढ़ ही चुके हैं।

राणाजी सावरकर को छुड़ाने की योजना में भी शामिल थे। वे गुप्त क्रांतिकारी साहित्य को भारत में भेजने के नाना उपाय खोज निकालते। इस विषय में मैडम कामा व राणाजी की युक्तियाँ वास्तव में प्रशंसनीय थीं।

उनके क्रांतिकारी कार्यों के परिणामस्वरूप उन्हें विद्रोही घोषित कर दिया गया। उनके परिवार के सदस्यों को चेतावनी दी गई कि वे राणाजी से पत्र-व्यवहार तक नहीं कर सकते। मैडम कामा व राणाजी को फ्रांस से निर्वासित कर भारत भेजने के लिए सरकार का दबाव बढ़ता ही जा रहा था, परंतु राणाजी ने पेरिस नहीं छोड़ा।

1914 के प्रथम महायुद्ध में उन्होंने फ्रांस स्थित भारतीय सेनाओं से संपर्क स्थापित किया और उनसे आग्रह किया कि वे ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध आवाज उठाएँ।

फ्रांस सरकार ज्यादा समय तक मित्र राष्ट्र का कहा नहीं टाल सकी। उन्हें बंदी बनाकर बोरोडेम्स जेल में डाल दिया गया। यद्यपि कुछ ही माह में उनको छुड़ाने का प्रबंध कर लिया गया।

टापू पर नजरबंदी

जेल से तो छूट गए, किंतु सरकार अब भी भयभीत थी। उन्हें पत्नी व पुत्र सहित मार्टिनिक्यू द्वीप में नजरबंद कर दिया गया। उस टापू पर राणाजी को परिवार का वियोग भी सहना पड़ा। 19 वर्षीय पुत्र रणजीत का रोगी शरीर वहाँ की अस्वस्थ जलवायु के कारण शीघ्र ही मृत्यु की गोद में जा पहुँचा। यही सदमा कम नहीं था कि पुत्र के वियोग में पत्नी ने भी प्राण त्याग दिए।

1920 में जब वे इस टापू से पेरिस लौटे तो अपना परिवार खो चुके थे।

मैडम कामा से पुनः भेंट

राणाजी का व्यवसाय चौपट हो चुका था। परिवार खत्म हो गया था, किंतु उन्हें अन्य नेताओं से यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि भारत के स्वतंत्रता संग्राम में आशातीत तेजी आई थी। भारतीय राजनीति के दृश्यपटल पर उभरते नए नेताओं ने देशभक्ति की

भावना को पुनः प्रज्वलित कर दिया था।

मैडम कामा से भेंट हुई। वे भी नजरबंदी से मुक्त हो गई थीं, किंतु उनका शरीर रोग से जर्जर हो गया था। इन परिस्थितियों में राणाजी ने अपनी ओर से उन्हें भारत भेजने के लिए काफी प्रयत्न किया। उन्होंने मैडम कामा को प्रेरणा दी कि वे भारत लौट जाएँ। इस प्रकार काफी लंबे समय तक प्रयत्न करने के बाद सरकार ने मैडम कामा को भारत लौटने की अनुमति प्रदान की।

द्वितीय महायुद्ध

जब राणाजी निर्वासित जीवन व्यतीत कर रहे थे, तो उन्हीं दिनों दूसरा महायुद्ध आरंभ हो गया। वे उन दिनों विंली में थे। उन्होंने पेरिस लौटना चाहा, किंतु जर्मन सरकार ने उन्हें नजरबंद कर दिया। अप्रैल 1941 में सुभाषचंद्र बोस के प्रयत्नों से उन्हें नजरबंदी से रिहाई मिली तथा वे पेरिस लौट आए।

देशभक्ति की ज्वाला

राणाजी काफी वृद्ध हो चले थे, किंतु देशभक्ति की भावना पहले से भी प्रबल हो गई थी। वे फ्रांस में भारतीयों को एकत्र कर 13 अप्रैल का ‘जलियाँवाला दिवस’ व 26 जनवरी आदि पर्व धूमधाम से मनाते थे। 1945 के बाद उन्हें इसके लिए भी काफी यातनाएँ सहनी पड़ीं। उन्होंने मातृभूमि से दूर, उसे याद करने के एवज में मिली प्रताड़ना भी सह ली।

अंतिम समय

देश स्वतंत्र होने के बाद वे 6 दिसंबर, 1947 को भारत आए। स्वतंत्र भारत की भूमि पर कदम रखने का सौभाग्य पाकर वे धन्य हो उठे। कुछ माह यहाँ बिताए। पुराने सगे-संबंधियों से मिले। स्वागत समारोहों में हिस्सा लिया व अप्रैल, 1948 में पेरिस लौट गए। प्रत्येक स्वतंत्रता सेनानी की भाँति उनके हृदय में भी अंत तक देशहित की चिंता बनी रही। उनका कहना था कि इतने प्रयत्नों से मिली स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए कठोर व्रत लेना होगा। दिसंबर, 1949 में सरदार सिंह रावजी राणा का पेरिस में निधन हो गया।

'एक स्नेही व्यक्तित्व'

एकला चलो रे

पेरिस की आतंकवादी 'त्रिमूर्ति' में से एक, महान् क्रांतिकारी, ब्रिटिश विरोधी व कुख्यात महिला आतंकवादी कहलानेवाली मैडम कामा हिंसक क्रांति की समर्थक थीं। अपने जोश, विद्रोही व उग्र स्वभाव के कारण ही उन्हें ये सब संबोधन मिले। वे क्रांतिकारियों की क्रांति-जननी थीं।

यहाँ तक कि उनके सगे-संबंधी भी इस क्रांतिकारी महिला से कोई संबंध नहीं रखना चाहते थे। उनकी एक संबंधी अपने संस्मरणों में लिखती हैं कि किस तरह जब वे विदेश जाने लगीं तो उनकी माँ ने विशेष रूप से सावधान किया था कि वे मैडम कामा से कोई संपर्क न रखें, न ही उनका कोई पत्र अथवा सामान यहाँ-वहाँ ले जाएँ।

इस तरह अपने ही समाज से निर्वासित मैडम कामा अपने ध्येय की ओर एकाकी आगे बढ़ीं। यद्यपि उन्हें निकट से जाननेवाले जानते थे कि किस तरह सशस्त्र हिंसा व रक्तपात का समर्थन करनेवाली, गोली-बारूद व बंदूकों की बातें करनेवाली महिला अपने किसी सगे को याद कर कैसे भावुक हो उठती थीं, अपने बाग के फूलों की याद में आँखें भर लेती थी या सगे-संबंधियों के चित्र पाने के लिए कैसी बेताब हो उठती थीं।

एक नया रूप

मैडम कामा की इस छवि से एक ऐसा स्नेही व्यक्तित्व उभरता है, जो मातृत्व के गुणों से भरपूर किसी स्नेही महिला का हो सकता है। स्त्रियोचित गुणों व मर्यादा की धनी मैडम कामा से मिलने के बाद उक्त संबंधी की उनके विषय में राय बदल गई थी। उन्होंने फिर लिखा—

"भीकू का मेरी माँ से दूर का रिश्ता था...। जब मेरी माँ ने उनसे मेरा परिचय कराया तो उन्होंने मुझे बाँहों में भर लिया। मुझे यह बूढ़ी महिला शुरू से ही अच्छी लगी। मैंने उन्हें कभी मिसेज कामा, मैडम कामा का भीकू आंटी नहीं कहा। हमेशा उनके प्रथम नाम से ही संबोधित किया...।

वह अपने घर-परिवार को याद करने से भी नहीं रोक सकीं। यद्यपि उन्होंने अपना मन कड़ा कर लिया था, किंतु उनके मन में भी वही अतृप्त इच्छाएँ थीं, जो प्रत्येक निर्वासित के मन में होती हैं...।"

साथियों से स्नेह

स्वभाव से ही स्नेही व मिलनसार मैडम कामा के लिए सभी क्रांतिकारी परिवार का ही एक अंग थे, उनका सुख-दुःख उनका अपना सुख-दुःख था। अपने सीमित परिवार से मिलकर मानो वे एक वृहत्तर परिवार पर अपना वात्सल्य बरसाती थीं।

भाषणों के माध्यम से लोगों को जोश दिलानेवाली मैडम कामा एक स्नेही माँ की भूमिका भी बखूबी निभाती थीं। प्रायः सभी क्रांतिकारी उनसे मिलने जाते थे।

निर्वासन का दंड तो सभी भोग रहे थे, कुछ ने अपनी मरजी से चुना था तो कुछ की मजबूरी थी, परंतु मैडम कामा का हर संभव प्रयास यही रहता कि वे अपने साथियों की समस्याओं को हल कर सके। चाहे कोई छोटा हो या बड़ा, वे उन्हें अपना 'साथी' ही कहती थीं।

क्रांतिकारियों के बीच यदा-कदा मतभेद हो जाता तो वे बड़े ही प्रेम से दोनों पक्षों की बात सुनतीं व बीच का रास्ता निकाल लेतीं।

परिवार का मोह

परिवार से दूर रहने पर भी मैडम कामा का परिवार के लिए अंत तक मोह बना रहा। उनके समृद्ध भाई ने उनके लिए संपत्ति में हिस्सा नहीं रखा, जबकि वे चाहते तो ऐसा कर सकते थे, किंतु मैडम कामा को इस बात से कोई अंतर नहीं पड़ा।

कहते हैं कि जब उनके भाई अर्देशर पेरिस में मृत्यु-शैया पर थे तो उन्होंने ही उनकी सेवा की। उन्होंने उस बात का कोई मलाल मन में नहीं रखा। वे प्रायः भावुक होकर मित्रों से कहतीं, 'भाई ने मेरी गोद में दम तोड़ा।'

मैडम कामा उन व्यक्तियों मे से थीं, जो किसी के भी दुर्व्यवहार से अपमानित या आहत होने के बजाय मौन भाव से अपना कर्तव्य निभाते चले जाते हैं। यहाँ ऐसा ही एक प्रसंग वर्णित है। पेरिस के एक मकान में उन्होंने काफी लंबा समय बिताया था। मकान-मालिक बदलते रहे, किंतु वे उस घर में किराएदार बन के रहती रहीं। एक बार ऐसी वृद्धा मकान-मालकिन से वास्ता पड़ा, जो मुँह पर तो मिठास दिखाती और पीठ पीछे वार करती। उनकी नजर मैडम कामा के पास आनेवाले पैसों पर रहती थी। ज्यों ही देखती कि उनके पास कहीं से पैसे आए हैं, तो वह किसी-न-किसी बहाने से बिल की रकम बढ़ा देती।

मैडम कामा के मित्रों ने उन्हें टोका भी कि वे उस झूठी महिला पर इतना विश्व ास न करें, वह उन्हें मूर्ख बनाती है, तब मैडम कामा ने उत्तर दिया—"मैं स्वयं फ्रांस आई हूँ। मुझे फ्रांसवालों ने बुलाया नहीं था। इसलिए वे मुझसे मनचाही रकम वसूल सकते हैं। मैं जबरन उनकी अतिथि बनी हूँ, अतः मुझे शिकायत करने का भी कोई अधिकार नहीं है।"

अनजाने रिश्तों की ओर

एक पारसी महिला श्रीमती बानी बाटली भाई के लिखे संस्मरणों से क्रांतिकारिणी मैडम कामा का धार्मिक, नारीपरक, भावुक व स्नेही रूप उभरकर सामने आता है।

उनकी मुलाकात 1930 में, विली में मैडम कामा से हुई। वे अपने पति व पुत्री के साथ एक रेस्त्राँ में बैठी थीं। एक वृद्धा ने इन महिलाओं को पारसी साड़ी में देखकर पूछा—"क्या आप बंबई से आए हैं?" फिर उन्होंने अपना परिचय देते हुए कहा कि वे रहती तो पेरिस में हैं, किंतु कुछ दिन के लिए विली आई हैं।"

वृद्धा ने तीनों को गले से लगाकर अभिवादन किया तो बाटलीभाई परिवार सकुचा-सा गया। इस पर वृद्धा बोली—"आप लोग सकुचा क्यों रहे हैं?" हमारे यहाँ तो ऐसे ही मिलते हैं, फिर उस वृद्धा ने उन्हें पता देते हुए चाय पर आमंत्रित किया।

बाटलीभाई परिवार मैडम कामा से मिलने पहुँचा तो वे लोग अपने साथ कुछ फूल ले गए। उन फूलों को देखते ही मैडम कामा की आँखें नम हो गईं।

मैडम कामा ने उनकी पुत्री को जरी के काम वाली सुंदर चीनी किनारी भेंट की, जो उन दिनों काफी मूल्यवान मानी जाती थी। बाटलीभाई परिवार ने काफी अरसे तक उस भेंट को उनकी सुखद स्मृति के रूप में सँजोकर रखा। वर्षों बाद भी वे मैडम कामा से मिलने पहुँचे, जब वे अस्पताल के बिस्तर पर अस्वस्थ अवस्था में पड़ी थीं। अनजानों को भी अपना बनाने की कला में मैडम कामा सिद्धहस्त थीं। जो एक बार मिल लेता, हमेशा के लिए उनका स्नेह का पात्र बन जाता।

सावरकर के हार्दिक भाव

सावरकर व उनके परिवार की जैसी सहायता उन्होंने की, वह वास्तव में प्रशंसनीय है। सावरकर तो उन्हें अपनी माता के समान मानते थे। जिन दिनों सावरकर जेल में थे, तो उन्होंने अपने भाई नारायण राव को जो पत्र लिखे थे, वे 'अंडमान की अनुगूँजें' में संकलित हैं। उन्हीं पत्रों के कुछ अंशों से उदाहरण प्रस्तुत हैं, जिन्हें पढ़कर पाठकगण स्वयं ही अनुमान लगा सकते हैं कि सावरकर के मन में मैडम कामा के लिए कैसे भाव थे—

"अपने घनिष्ठ स्वजन के गायब हो जाने, मित्रों के विश्व ासघात करने तथा प्रियजन से मिली उपेक्षा के कारण इनसान का इनसानियत से जो भरोसा टूट जाता है, वह ऐसे सच्चे उदार तथा स्नेही हाथों के स्पर्श मात्र से सहज ही लौट आता है। कितने दुःख की बात है कि मैं इस स्नेही महिला को पत्र लिखकर यह नहीं बता सकता कि मेरे मन में उनकी उदारता तथा जरूतमंदों व गरीबों के प्रति उनकी चिंता के लिए कितना अधिक सम्मान का भाव है। मैं उनसे मिलना चाहता हूँ, किंतु इन परिस्थितियों में यह संभव नहीं है। अन्य संबंधियों से पहले, उन्हें मेरा नमस्कार देना। संबंधी न होने पर भी वे हमारी कितनी सहायता करती

हैं।''

प्रिय मैडम कामा का स्नेह बराबर बना रहा। उनके स्नेह से किसी अन्य स्नेह की तुलना नहीं हो सकती। युद्ध के दिनों में भी वे तुम्हें नहीं भूलीं। इस प्रकार बहुधा खून के रिश्ते काम नहीं आते व उदारमन लोगों का स्नेह प्राप्त हो जाता है...।

''प्रिय मैडम कामा को मेरा सम्मान और प्यार। आशा है, वे अपने स्वास्थ्य की देखभाल कर रही होंगी। कितने दुःख की बात है कि जो दिन उन्हें अपने मुसकुराते बच्चों के बीच बिताने चाहिए थे, वे दिन वे निर्वासितों के रूप में व्यतीत कर रही है...।''

'वंदेमातरम्' से कुछ अंश

मैडम कामा जानती थीं कि समाचार-पत्रों के माध्यम से ही देशभक्ति की भावना को जन-जन तक पहुँचाया जा सकता है। उन्होंने अपनी लौह लेखनी के बल पर न केवल अंग्रेज सरकार के मुँह पर करारे तमाचे जड़े, अपितु देशवासियों के सामने क्रांतिकारियों से जुड़े हर समाचार, सूचना व जानकारी का विस्तृत ब्योरा दिया, ताकि वे भी उस धारा में एकप्राण हो सकें। 'वंदेमातरम्' पत्र के कुछ अंश—

''बंगाल के वीर व विवेकशील नेताओं ने जो कार्य आरंभ किया था, उसे अंग्रेज सरकार के अत्याचारों के कारण भारत में जारी रखना असंभव जान पड़ता है—अतः हम इस कार्य को 'वंदेमातरम्' के माध्यम से करेंगे। यह कार्य तीन चरणों में होगा—लोगों को जागरूक करना, युद्ध और फिर पुनर्निर्माण। चाहे कोई भी राष्ट्रीय आंदोलन क्यों न हो, इन तीन चरणों में ही पूरा होता है। हमें भी इन तीनों चरणों से गुजरना होगा। भारत के लिए इतिहास अपनी धारा नहीं बदल सकता। मेजिनी के बाद गैरीबाल्डी, गैरीबाल्डी के बाद कबूर। हमारे साथ भी ऐसा ही होगा—सद्‌गुण तथा विवेक, युद्ध और अंततः स्वतंत्रता...।''

*(*सितंबर, *1909)*

''बर्लिन से 'तलवार' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ—एक ऐसे देश की राजधानी से, जिसकी इन दिनों इंग्लैंड से सबसे अधिक दुश्मनी है। हम अपने साथियों को इस चुनाव के लिए बधाई देते हैं। उस आश्रयस्थल में ब्रिटिश साम्राज्य के शस्त्र उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकेंगे व हमारी स्वतंत्रता के लिए शक्तिशाली जर्मनी से मित्रता भी काफी लाभप्रद रहेगी।''

*(*फरवरी, *1910)*

''युवा हिंदुस्तान, युवा मिस्र व आयरलैंड, मैं आपके लाभार्थ 'रूसी क्रांति की तैयारी किस प्रकार करते हैं, शीर्षक से एक पुस्तिका पुनः प्रकाशित करूँगी। आशा है, यह आपको पसंद आएगी। युवा साथियो! मैं किसी की नकल करने के पक्ष में नहीं हूँ, किंतु हमारे लिए विभिन्न विधियों का अध्ययन करना आवश्यक है। इसके बाद ही हम अपनी रुचि व स्थितियों के अनुसार किसी एक को चुन सकेंगे।''

*(*सितंबर, *1990)*

सावरकर बंदी बना लिए गए, किंतु फिर भी राजनीतिक हत्याएँ जारी रहीं। जब टेनीवेली के जिला मजिस्ट्रेट श्री आथे की हत्या हुई तो वंदेमातरम् ने कहा—

''यह संदेश स्पष्ट है। हम अंग्रेजों को पहले ही चेतावनी दे चुके हैं कि हमारे और उनके बीच

युद्ध अनिवार्य है और युद्ध छिड़ भी चुका है। अंग्रेजों को मारकर हमने अच्छा ही किया। जब-जब कोई वीर देशभक्त किसी अंग्रेज को मारे, तब-तब हमें खुशी मनानी चाहिए।''

*(*अगस्त *1912)*

मैडम कामा ने अपील की—

देशवासियो! आप जितना कुछ लिख सकते हैं, लिखिए। सारा उत्तरदायित्व मैं लेती हूँ। किसी भी लेखक का नाम न तो बताया जाता है और न ही प्रकाशित किया जाएगा। जब तक कि लेखक ने लेख पर हस्ताक्षर न किए हों। ग्राहकों तक पत्र पहुँचने से पहले सभी पांडुलिपियाँ नष्ट कर दी जाएँगी।

*(*सितंबर *1916)*

लाला हरदयालजी ने अपने एक लेख में लिखा—

''अत्याचारियों के विरुद्ध खुला युद्ध ही हमारे क्रांतिकारी आंदोलन का अंतिम ध्येय होगा। हमारे साथ जन-साधारण व सेना हो, तभी यह युद्ध सफल हो सकता है। किसी भी आंदोलन के लिए विश्व ास व उत्साह बहुत महत्त्व रखते हैं। अतः समस्या यह है कि हम सेना को अपनी ओर कर लें...।

सभी शिक्षित नवयुवक प्रतिवर्ष सेना में भरती हों तथा प्रतिवर्ष प्रशिक्षित व्यक्ति सेना छोड़ दें, जिससे उनके स्थान पर नए रंगरूट भरती हो सकें। वे अंग्रेज सेना की हर बटालियन व कंपनी में हों, ताकि हमें शत्रुओं की सारी जानकारी मिल सके...।''

मैडम कामा ने अपनी लेखनी के माध्यम से ब्रिटिश साम्राज्य पर कड़े प्रहार जारी रखे। उन्होंने एक संपादीय में लिखा—

''हमें मान लेना चाहिए कि प्रेस एक्ट के कारण भारत में स्वतंत्र लेखन और विचारों के प्रकाशन की गुंजाइश नहीं रही है। अतः हमारे क्रांतिकारी दल का यह महत्त्वपूर्ण कार्य होना चाहिए कि वह विदेशों से क्रांतिकारी साहित्य का भारत में आयात करें। इन परिस्थितियों में राजनीतिक कार्यों का केंद्र कलकत्ता, पूना व लाहौर से हटकर जेनेवा, लंदन व न्यूयार्क बनना चाहिए।''

हम अपने पाठकों को याद दिलाना चाहते हैं कि यद्यपि हिंदुस्तान में इस 'पत्र' पर पाबंदी है, किंतु फिर भी इसकी अनेक प्रतियाँ हमारे देशवासियों के घरों तक पहुँच रही हैं तथा सराही भी जा रही हैं। हम पहले भी कह चुके हैं कि भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष से जुड़े प्रत्येक नर-नारी का यह पुनीत कर्तव्य बनता है कि वह इस प्रकार के क्रांतिकारी साहित्य के प्रचार-प्रसार में अपना योगदान दें। हम पाठकों से अनुरोध करते हैं कि वे हरसंभव साधन से पत्र की भावी प्रतियों को देश में पहुँचाने के लिए प्रयत्नशील रहें।''

(जनवरी, 1911)

'वंदेमातरम्' ने इस अंक के साथ तीसरे वर्ष में प्रवेश किया है। हिंदू जाति का यह तुच्छ सेवक इसी प्रकार चलता रहेगा, हो सकता है कि समय-समय पर लेखक व प्रकाशक बदलते रहें। मुझे यह कहने में प्रसन्नता अनुभव हो रही है कि पत्र तेजी से प्रगति कर रहा है। इसकी अधिक-से-अधिक प्रतियाँ वितरित व प्रकाशित हो रही हैं...।''

(सितंबर, 1911)

'हमें' क्या करना चाहिए' शीर्षक के अंतर्गत लेखक ने कहा—

''भारत सरकार ही मुख्यतः भारत में अकाल व प्लेग के लिए उत्तरदायी है। हिंदुस्तानी क्रांतिकारी यह स्पष्टतः देख रहे हैं कि अंग्रेज सरकार के समूल नाश व अपनी सरकार बनाने के बाद ही इस प्रकार के अत्याचारों व शोषण से छुटकारा पाया जा सकता है। इसका अर्थ होगा 'युद्ध'। हालात से निपटने का कोई और रास्ता नहीं दिखता। हमें इस ब्रिटिश क्रूरता का एक-न-एक दिन मुँह तोड़ जवाब देना ही होगा। अब समय की यही माँग है कि हम शत्रु की वास्तविक स्थिति व चाल का अंदाजा लगा लें।''

(फरवरी, 1912)

''हमें अपने स्वार्थ व नीचता को भुलाकर याद रखना होगा कि प्रफुल्ल चाकी, कन्हाईलाल, खुदीराम व मदनलाल ने इसी कार्य के लिए अपने प्राण त्याग दिए हैं। हमें याद रखना चाहिए कि दो महीने पहले तिलक की पत्नी सत्यभामाबाई ने हृदयाघात से प्राण त्याग दिए, इंदुभूषण रॉय ने अंडमान में आत्महत्या कर ली, क्योंकि वे अपने ऊपर हो रहे क्रूर अत्याचार सह नहीं सकें, चिदंबरम की पत्नी किस प्रकार अकेली व असहाय रह गईं। भूलिए मत, आज भी हमारे कितने साथी जेल की सलाखों में तड़प रहे हैं। वारींद्र, सावरकर, हेमदास व अन्य क्रांतिकारियों को अंडमान की जेल से निकालकर लाना हमारा नैतिक कर्तव्य बनता है। इन सबसे ऊपर, जब तक हम शत्रु को अपनी मातृभूमि से खदेड़ नहीं देते, तब तक हम किसी भी रूप में समृद्ध अथवा संपन्न नहीं हो पाएँगे...।''

(सितंबर, 1912)

संदर्भ सूची

मैडम कामा के जीवन के विषय में अब तक बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। उनके साथी क्रांतिकारियों के जीवन वृत्त, गुप्तचर विभाग की रिपोर्टों व तत्कालीन समाचार-पत्रों के माध्यम से हमें उनके विषय में थोड़ी जानकारी मिलती है।

पुस्तक लेखन में मुझे जिन लेखकों की पुस्तकों से सहायता मिली, उनके प्रति मैं अपना आभार व्यक्त करती हूँ। इस शृंखला में 'आधुनिक भारत के निर्माता—मैडम भीकाजी रुस्तम कामा (प्रकाशन विभाग), 'देश जिन्हें भूल गया' (शंकर सहाय सक्सेना); 'क्रांतिकारी कोश' (श्रीकृष्ण 'सरल'), 'मैडम कामा—ए ट्रू नेशनलिस्ट' (वी.डी. यादव), 'भीकाजी कामा' (एन.सी.ई.आर.टी.), 'स्वतंत्रता संग्राम की क्रांतिकारी महिलाएँ' (रचना भोला 'यामिनी') विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। अप्रत्यक्ष रूप से भी जिनकी पुस्तकें व सामग्री सहायक रहीं, उसके लिए भी हृदय से आभारी हूँ।

Published by

Pratibha Pratishthan

1661 Dakhni Rai Street,

Netaji Subhash Marg, New Delhi-110002

ISBN 978-93-5186-177-5

Madam Bhikaji Cama

by Rachna Bhola ‘Yamini’

Edition

First, 2013